



# ॥ प्रेक्षाध्यान ॥

अध्यात्म योग का मासिक पत्र

वर्ष 39  
अंक 02  
फरवरी 2018

[www.preksha.com](http://www.preksha.com)



- परम पुरुषार्थ
- मन
- वाग्गुप्तता से क्या मिलेगा?



# सर्दियों का मौसम

वक्त है, एक बार फिर से खुद को सेहतमंद और ऊर्जावान बनाने का :

जैन विश्व भारती लाडनूं अवस्थित  
सेवाभावी आयुर्वेदिक रसायनशाला द्वारा निर्मित  
सुपर्वप्राश (च्यवनप्राश का उन्नत स्वरूप)

स्वर्ण युक्त मकरध्वज, अभ्रक भस्म, केशर एवं  
चाँदी के संयोग से बना विशिष्ट योग



सेवाभावी सुपर्वप्राश :

पैकिंग	मूल्य
300 ग्राम	₹ 300.00
500 ग्राम	₹ 480.00
1 किग्रा	₹ 890.00

सुपर्वप्राश मंगवाने हेतु  
सम्पर्क करें :



**SEVABHAVI**  
DEDICATED TO AYURVED

सेवाभावी आयुर्वेदिक रसायनशाला

जैन विश्व भारती

पोस्ट : लाडनूं-341306

जिला : नागौर (राजस्थान)

फोन : (01581) 226969

मोबाइल : 97849-31457

ईमेल [sevabhavirasayanshala@gmail.com](mailto:sevabhavirasayanshala@gmail.com)



# ॥ प्रेक्षाध्यान ॥

अध्यात्म योग का मासिक पत्र



Tulsi Adhyatma Needam  
Jain Vishva Bharati  
Publication

Prekshadhyan  
A Spiritual Yoga Monthly

वर्ष 39 अंक 02 फरवरी 2018

सम्पादक  
जैन लूणकरण छाजेड़  
+91 9887914000  
lkchhajer3@gmail.com  
editor@preksha.com

शुल्क :  
प्रति अंक : 30 रु.  
पाँच वर्ष : 2000 रु.  
दस वर्ष : 3000 रु.  
एक वर्ष ( विदेश ) : 2500 \$

कार्यालय :  
प्रेक्षा फाउण्डेशन  
तुलसी अध्यात्म नीडम्  
जैन विश्व भारती  
लाडनू-341 306  
राजस्थान  
भारत  
दूरभाष :  
+91 1581 226119  
+91 82333 44482  
www.preksha.com

© सर्वाधिकार सुरक्षित

पाठकों के सुझावों का स्वागत है  
-सम्पादक  
+91 9414139192

वैधानिक सूचना :  
प्रेक्षाध्यान मासिक में प्रकाशित रचनाओं में  
व्यक्त विचारों से सम्पादक/प्रकाशक की  
सहमति आवश्यक नहीं है और न उनका  
कोई वैधानिक उत्तरदायित्व ही है।



## भीतर के पृष्ठों पर

परम पुरुषार्थ	आचार्य तुलसी	06
मन	आचार्य महाप्रज्ञ	07
वाग्गुप्तता से क्या मिलेगा ?	आचार्य महाश्रमण	11
जरूरी है सम्यक् दर्शन	साध्वी प्रमुखा कनक प्रभा	12
प्रेक्षाध्यान और अखण्ड व्यक्तित्व विकास	मुनि धर्मेश	13
प्रेक्षा-कथा		15
जैन योग	डॉ. दामोदर शास्त्री	16
आतापना : स्वास्थ्य और शक्ति की साधना	साध्वी कनकश्री	18
प्रेक्षा-दर्शन		21
प्रेक्षा फाउंडेशन संबद्धता प्राप्त केन्द्र सूची		22
विजातीय द्रव्य की उत्पत्ति और वृद्धि	पं. श्रीराम शर्मा आचार्य	23
Great Experiences with Yogasana	Muni Kishanlal	25
Sharir Preksha	Mukhya Niyojika Sadhvi Vishrut Vibha	28
संचालित प्रेक्षावाहिनियों के संवाहकों की सूची		29
संभावित प्रेक्षावाहिनी संवाहकों की सूची		30
विधिगर्गप्रपा में निर्दिष्ट मुद्राओं का सोद्देश्य-2	डॉ. साध्वी सौम्यगुणाश्री	31
जैन परम्परा में ध्यान	धर्मीचन्द चौपड़ा	33
त्वचा रोग और निवारण	पीयूष वी. पाण्ड्या	35
पैरों में दर्द : सरल उपचार	डॉ. भगवान स्वरूप गुप्त	37
दंत रोग	डॉ. सचिन लोढ़ा	38
प्रेक्षा गतिविधि		39-41



# ॥ प्रेक्षा फाउण्डेशन ॥

## जैन विश्व भारती

### प्रेक्षा कार्ड योजना



सुखी एवं शांतिपूर्ण जीवन जीने की दिशा में हमने बढ़ाया एक कदम.....  
आप भी साथी बनें और प्राप्त करें सदस्यता प्रेक्षा कार्ड की।

अधिक जानकारी के लिए Log on करें

[www.preksha.com](http://www.preksha.com)

सम्पर्क सूत्र : 09051401456, 8233344482

# पहला सुख निरोगी काया



विचार-प्रेक्षा

**भी**तर की चिन्मयता को प्रकट करने एवं शक्ति को उजागर करने के

लिए नश्वर शरीर को आधार चाहिए। 'शरीर माघं खलु धर्म साधनं' पहला सुख निरोगी काया। शरीर स्वस्थ है तो सबकी उपादेयता है और शरीर अस्वस्थ है तो सब कार्य गौणता को प्राप्त हो जाते हैं। उल्लास व आनन्द का आधार स्वस्थता ही है। प्रत्येक कार्य की सफलता की पहली बुनियाद है स्वस्थता। रोगी को संसार की मायावी दुनिया रमणीय नहीं लगेगी। उसे तो रोग मुक्ति ही चाहिए। रोगी रोगमुक्ती के लिए जितना छटपटाता है उतना और किसी के लिए नहीं। आहार स्वास्थ्य रूपी देवता का असाधारण पुजारी है पर उससे भी बड़ा पुजारी मन और उसका परिवार है। स्वस्थ मन के लिए पवित्र संकल्प, पवित्र चिन्तन, पवित्र स्मृति, पवित्र आत्मविश्वास का होना आवश्यक है। स्वास्थ्य शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक स्तर पर स्वस्थ रखना प्रथम आवश्यकता है। हमारा शरीर, मन व भाव तीनों एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। अतः स्वास्थ्य सबसे बड़ी सम्पदा है। सबसे बड़ा धनी वह नहीं है जिसकी तिजोरियां भरी हुई हैं या बैंक बैलेंस अथाह है। अपितु सबसे बड़ा धनी वह है जो तन-मन की स्वस्थता बनाये हुए है। जिसके पास स्वस्थ तन सधा हुआ मन और शांत वृत्तियों का वैभव नहीं, वह गरीब है।



स्वस्थता के लिए आवश्यक है कि शयन-जागरण नियमित हो। भोजन, धूमना-फिरना और सोचना नियमित हो। ताकि बीमारियों को खुराक ही नहीं मिलेगी तो व्यक्ति नियमितता के चलते स्वस्थ बना रह सकेगा। शारीरिक स्वास्थ्य की स्वस्थता के साथ मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य के लिए आत्मा, मन व इन्द्रियां प्रसन्न होनी चाहिए। खाद्य संयम, मधुर मुस्कान, पुरुषार्थ, संगीत, ध्यान, योग, आसन, प्राणायाम और स्वाध्याय ये सब स्वस्थ रहने के अमोघ विधि मंत्र हैं। मंद, शांत एवं गहरा श्वास दीर्घ जीवन और स्वस्थ जीवन का सूचक है। आहार पवित्र व संयत है तो अपार शक्ति का दर्शन होता है। सात्विकता, तेजस्विता निखरती है और मानसिक उज्ज्वलता सरिता सी उज्ज्वल होती है।

व्यक्ति अपनी जीभ पर पूरा नियंत्रण रखे तो भूख को विजय कर सकता है। विभिन्न तरह के व्यंजनों का उपभोग स्वाद के लिए करता है। अनेक व्यक्ति अपना जीवन पूर्ण संयम एवं जीभ पर नियंत्रण करके जीवन यापन कर रहे हैं। ऐसे व्यक्ति प्रायः मानसिक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ दिखलायी देते हैं। जीभ की संवेदनाओं पर नियंत्रण न करने से अनेक बीमारियां हो जाती हैं। ऐसा माना जाता है कि अधिकांशतः बीमारियां जीभ की संवेदनाओं के कारण होती हैं। आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में खाद्य संयम की बात ही मूल होती है अब एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति में भी यह स्वीकृति हो गई। रक्तचाप, मधुमेह इत्यादि अनेक बीमारियों पर डॉक्टर सबसे पहले खाद्य पदार्थों पर प्रतिबन्ध लगाता है। भोजन का जितना गहरा संबंध बीमारियों के साथ है उतना ही गहरा संबंध मानसिक शक्ति के साथ भी है।

जिस व्यक्ति को आगे बढ़ना है उसे अपनी संवेदनाओं पर नियंत्रण करना

होगा। एक कहानी के माध्यम से जाना जा सकता है कि एक पिता के तीन पुत्र थे उसने अपने तीनों पुत्रों को बुलाकर कहा मैं प्रत्येक को हजार-हजार रुपये दे रहा हूं। तीन वर्षों

तक तुम इनका उपयोग करना, फिर मुझे ये रुपये लौटा देना। तीनों ने स्वीकृति दी और रुपये लेकर चले गये। जो सबसे छोटा पुत्र था, वह संयमी था। उसने अपनी संवेदनाओं को नियंत्रित कर लिया था। उसने व्यवसाय प्रारम्भ किया। संयम से रहने लगा। उसका व्यवसाय दिन-प्रतिदिन विकसित होता गया। दूसरा पुत्र उतना संयमी नहीं था। उसने सोचा खाने को रोटी चाहिए। रोटी

मिल रही है, कौन व्यवसाय का झंझट करे। उसने रुपये ब्याज पर दे दिये। जो ब्याज मिलता उससे गुजारा कर लेता।

सबसे बड़ा पुत्र संवेदनाओं का दास था। वह वहां गया, जहां संवेदनाओं की पूर्ति होती है। खूब-मौज-शौक करने लगा। हजार रुपये खर्च हो गए। उसके पास अब एक भी पैसा नहीं रहा। वह दर-दर का भिखारी बन गया। वह पेट भरने के लिए जंगल में जाता, लकड़ियों का भारा ले आता और जो कुछ पांच-दस पैसे मिलते, उससे गुजारा करता।

तीन वर्ष पूरे हुए। तीनों पिता के पास गए। पिता ने कहा लाओ, अपनी मूल पूंजी वापस करो। बड़ा पुत्र बोला-पिताजी! मैं इन्द्रियों का दास बन गया था। इन्द्रिय-विषयों की पूर्ति में मैंने सारा धन गंवा दिया। मेरे पास कुछ नहीं बचा। केवल शरीर बचा है और वह भी जर्जर। दूसरे पुत्र ने मूल पूंजी

पिताजी को लौटाते समय कहा-पिताजी! यह मूल पूंजी मैंने सुरक्षित रख ली थी। इसके ब्याज से जो प्राप्त होता, उससे जीवन-यापन करता रहा। तीसरे पुत्र ने कहा-पिताजी! मूल पूंजी सौ गुना बढ़ गई है। स्थान-स्थान पर मेरा व्यवसाय चल रहा है। ये रहे बही-खाते।

पहले लड़के ने मूल पूंजी खो डाली। दूसरे ने मूल पूंजी सुरक्षित रख ली और तीसरे ने मूल पूंजी को बहुत बढ़ा लिया। जिस व्यक्ति का अपनी संवेदनाओं पर नियंत्रण होता है वह बहुत आगे बढ़ जाता है। जिसमें नियंत्रण की पूरी क्षमता नहीं होती, एक सीमा तक होती है, वह मूल स्थिति में कायम रह जाता है। जो संवेदनाओं का दास बन जाता है वह अपने जीवन की दुर्गति कर बैठता है। उसका धन पतन होता है। हम इस सचाई का अनुभव करें कि संवेदनाओं पर नियंत्रण किए बिना जीवन में विकास नहीं किया जा सकता। संवेदनाओं पर नियंत्रण करने के लिए प्रेक्षाध्यान में दीर्घश्वास का अभ्यास किया जाता है। दीर्घश्वास को अपना कर संवेदनाओं पर नियंत्रण साधा जाता है। आचार्य महाप्रज्ञ जी बताते थे कि दस मिनट तक दीर्घश्वास का प्रयोग करें। एक मिनट में दो श्वास लें। समस्या हल हो जायेगी। संवेदन नियंत्रण के लिए प्राणकेन्द्र पर ध्यान करना यानि नासाग्र पर ध्यान करना चाहिए। संवेदनों पर नियंत्रण पाने का मार्ग सबके लिए कल्याणकारी है। बचपन से ही अथवा विद्यार्थी जीवन से ही विद्यार्थी को उपाय और परिणाम बोध से परिचित करा दिया जाए तो न केवल उसका विद्यार्थी जीवन अपितु सामाजिक जीवन भी अच्छा होगा।

जैन लूणकरण छजेड





# परम पुरुषार्थ



आचार्य तुलसी

ध्यान एक परम पुरुषार्थ है, यह दृष्टि जब तक स्पष्ट नहीं हो जाती है, व्यक्ति, समाज या राष्ट्र का कल्याण नहीं हो सकता। दृष्टि की स्पष्टता किसी भी कार्य की सफलता का वह बिन्दु है, जिसे नजरअंदाज कर कोई भी व्यक्ति आगे नहीं बढ़ सकता। ध्यान से शक्ति का अर्जन होता है और उस अर्जित शक्ति से व्यक्ति का निर्माण होता है।

कुछ लोग ध्यान को निष्क्रियता का प्रतीक मानते हैं। उनकी दृष्टि में ध्यान का प्रयोग वे व्यक्ति करते हैं जिनके पास कोई दूसरा महत्वपूर्ण काम नहीं होता, पर मैं इस मान्यता से सहमत नहीं हूँ। मेरे अभिमत से यह चिंतन उन लोगों का हो सकता है जो ध्यान विधि से परिचित नहीं हैं और उस प्रक्रिया से गुजरे नहीं हैं। जो ध्यान अकर्मण्यता को निष्पन्न करता है, मैं उसे ध्यान मानने के लिए भी तैयार नहीं हूँ। ध्यान की शक्ति इतनी विस्फोटक होती है कि वह मानव-चेतना में छिपी हुई अनेक विशिष्ट शक्तियों का जागरण कर मनुष्य को कहां-से-कहां पहुंचा देती है?

ध्यान धर्म या अध्यात्म का अभिन्न अंग है। इसे प्रेक्षाध्यान के रूप में प्रस्तुति देने के पीछे एक बहुत व्यापक दृष्टिकोण रहा है। इस पद्धति के आविष्कार में पंद्रह वर्ष का समय लगा। आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ की नींव डाली। उसके सही निर्माण में प्रारम्भिक रूप से पन्द्रह वर्ष लग गए। वि.सं.1817 में जिस तेरापंथ का उदय हुआ, उसकी व्यवस्थित रूपरेखा वि.सं. 1832 में सामने आई। पन्द्रह वर्ष की लम्बी तपस्या के बाद धर्मसंघ का जो संविधान बना, वह आज भी एक उदाहरण बना हुआ है।

पूज्य गुरुदेव कालूगणी के स्वर्गवास के बाद हम उन्हीं के आशीर्वाद से नई दिशा में चले। जिस दिन चले, उसके पन्द्रह वर्ष बाद दिल्ली में अणुव्रत का प्रथम अधिवेशन हुआ। हम एक असांप्रदायिक धर्म की घोषणा करने में सफल हो गए।

किसी भी कार्य के पीछे कितनी गहरी तपस्या करनी होती है। बिना तपस्या के भी काम हो सकता है, पर वह अभीष्ट परिणाम नहीं ला सकता। कार्य की सफलता के लिए पुरुषार्थ के पीछे न जाने कितने तत्व जुड़ते हैं, उन सबको अखंड रूप में जानने की अपेक्षा है।

सामान्यतः हम वस्तु को खंडशः देखते हैं। खंडशः दर्शन अधूरापन है। हमारे अर्हत अखंड ज्ञान के अधिकारी होते हैं। वे केवलज्ञान प्राप्त कर तत्व का सर्वांगीण प्रतिपादन करते हैं। कुछ दार्शनिक मानते हैं-

सर्वं पश्यतु वा मा वा तत्वमिष्टं तु पश्यतु।

सब-कुछ जानने-देखने से लाभ क्या? केवल इष्ट तत्व को जानना चाहिए, किन्तु किसी भी तत्व को सर्वांगीण रूप से जानने वाले को सब तत्वों का ज्ञान स्वतः प्राप्त हो जाता है। आचार्यों में कहा गया है-जे एंग जाणई से स्वंग जाणई-जो एक को जानता है, वह सबको जानता है। ऐसी स्थिति में किसी एक ही पहलू और तत्व को पकड़कर बैठने से काम नहीं हो सकता। शकुन, स्वप्न, ज्योतिष आदि तत्वों का भी अपने-अपने स्थान पर मूल्य है, किन्तु पकड़कर बैठ गए तो पुरुषार्थ पर पानी फिर जाएगा।

पुरुषार्थ हर व्यक्ति के हाथ की बात है, पर ध्यान का पुरुषार्थ कोई-कोई ही कर सकता है। इसलिए हर व्यक्ति को इसके लिए प्रयत्नशील रहने की अपेक्षा है। ध्यान का पुरुषार्थ करने वाले व्यक्तियों को दो बातों पर ध्यान देना जरूरी है। पहली बात यह है कि ध्यान के साधक में किसी प्रकार का भय न हो और दूसरी बात है, उसमें किसी प्रकार का प्रलोभन न हो।

भय की उत्पत्ति आशंका से होती है। साधक के मन में यह आशंका हो कि मैं जो साधना कर रहा हूँ, उससे मेरा अहित तो नहीं हो जाएगा? इतने वर्ष हो गए साधना करते-करते, अब तक कोई परिणाम नहीं निकला है। पता नहीं क्या होने वाला है? यह स्थिति व्यक्ति को अपने प्रति संदिग्ध बना देती है। संशय की स्थिति में निराशा और भय की उत्पत्ति अस्वाभाविक नहीं है।

कुछ व्यक्तियों में भय तो नहीं होता पर उनके विचार स्थिर नहीं हो पाते। शायद वह ठीक है, वहां अच्छा हो रहा है, इस चिंतन में वे अपने निर्धारित लक्ष्य के प्रति समर्पित नहीं रह पाते। दूर से पर्वत सुहावने लगते हैं-इस जनश्रुति के अनुसार सही पथ पा लेने के बाद भी उनका झुकाव दूसरी ओर बना रहता है। यह भटकन की स्थिति है। किसी भी प्रलोभन में आकर इधर-उधर भटकने वाला साधक कभी सही रास्ता पा ही नहीं सकता।

कहा जाता है कि संत कम्प्यूशियस एक बार सम्राट के अतिथि बने। वहां तीन पिंजरे रखे हुए थे। एक पिंजरे में चूहा था, उसके सामने मेवा पड़ा था। दूसरे पिंजरे में बिल्ली थी, उसके सामने मलाई से भरा हुआ कटोरा था। तीसरे पिंजरे में बाज पक्षी था, उसके सामने ताजा मांस था। चूहा, बिल्ली और बाज-तीनों भूखे थे, फिर भी चूहा मेवा नहीं खा रहा था। बिल्ली मलाई नहीं खा रही थी और बाज मांस नहीं खा रहा था। सम्राट ने संत से पूछा-‘ये तीनों भूखे हैं, अपना-अपना भक्ष्य खाना चाहते हैं फिर भी खा क्यों नहीं रहे हैं?’

संत कम्प्यूशियस ने सारी स्थिति का आकलन कर कहा-‘चूहा अपने सामने बिल्ली को देखकर

भयभीत है। इसलिए उसे मेवा खाना याद ही नहीं रहा। बिल्ली अपने सामने बाज को देखकर घबरा रही है, चूहा और मलाई दोनों उसके प्रिय खाद्य है, पर बाज के भय से उसके रस का स्वाद ही नहीं हो पाता और वह भयाक्रांत होकर अपने बचाव की बात सोच रही है। बाज के सामने किसी प्रकार का भय नहीं है, पर वह दो पदार्थों के प्रलोभन में फंसा हुआ है। पहले बिल्ली को खाऊं या चूहे को? इस डांवाडोल स्थिति में उसे अपने पिंजरे में रखा हुआ मांस दिखाई ही नहीं दे रहा है। लम्बे समय तक इनकी स्थिति यही रही तो ये तीनों ही भूख से तड़प-तड़प कर मर जाएंगे।’

मैं चाहता हूँ कि हमारे साधक निराशा या भय से मुक्त हों और प्रलोभन के प्रवाह में न बहें। भय और प्रलोभन से चित्त विक्षिप्त होता है। इसलिए सही गुरु के सही पथदर्शन से ही सीखकर उसका अभ्यास करना चाहिए। इस क्रम से अपना ही नहीं, समूची मानवता का भला हो सकता है। □



# मन

## परिभाषा

वर्तमान युग मानसिक समस्याओं का युग है। व्यक्ति मन की समस्या से संतुष्ट बना हुआ है। सुख एवं शान्तिपूर्ण जीवन में प्रमुख बाधा है-मन का समस्याग्रस्त होना। व्यक्ति मन की समस्या से मुक्ति पाना चाहता है। मन की समस्या से मुक्ति पाने के लिए मन को समझना जरूरी है। मन को समझे बिना, उसके अस्तित्व और कर्तृत्व को पहचाने बिना मन की समस्या को समाहित नहीं किया जा सकता।

प्रश्न है-मन क्या है? मन कोई स्थायी तत्त्व नहीं है। वह चेतना से सक्रिय बनता है। एक वाक्य में परिभाषा की जाए तो कहा जा सकता है-जो चेतना बाहर जाती है, उसका प्रवाहात्मक अस्तित्व ही मन है। शरीर का अस्तित्व जैसे निरन्तर है वैसे भाषा और मन का अस्तित्व निरन्तर नहीं है, किन्तु प्रवाहात्मक है। 'भाष्यमाण' भाषा होती है। भाषण से पहले भी भाषा नहीं होती और भाषण के बाद भी भाषा नहीं होती। भाषा केवल भाषण-काल में होती है-'भासिज्जमाणे भासा' इसी प्रकार 'मन्यमान' मन होता है। मनन से पहले भी मन नहीं होता और मनन के बाद भी मन नहीं होता। मन केवल मनन-काल में होता है-'मणिज्जमाणे मणे।' मन एक क्षण में एक होता है-'एगे मणे तंसि समयंसि।'

## मन : विभिन्न मत

मन के विषय में अनेक धारणाएं हैं-  
समतात्मक भौतिकवाद के अनुसार मानसिक क्रियाएं स्वभाव से ही भौतिक हैं।  
कारणात्मक भौतिकवाद के अनुसार मन पुद्गल का कार्य है।

गुणात्मक भौतिकवाद के अनुसार मन पुद्गल का गुण है।

जैन-दृष्टि के अनुसार मन दो प्रकार के होते हैं-एक चेतन और दूसरा पौद्गलिक।

पौद्गलिक मन ज्ञानात्मक मन का सहयोगी होता है। उसके बिना ज्ञानात्मक मन अपना कार्य नहीं कर सकता। उसमें अकेले में ज्ञान-शक्ति नहीं होती। दोनों के योग से मानसिक क्रियाएं होती हैं।

ज्ञानात्मक मन चेतना है। वह पौद्गलिक परमाणुओं से नहीं बन सकता। वह पौद्गलिक वस्तु का रस नहीं है। पौद्गलिक वस्तु का रस भी पौद्गलिक ही होगा। पित्त का निर्माण यकृत में होता है। चेतना न मस्तिष्क का रस है और न मस्तिष्क की आनुषंगिक उपज भी। वह कार्यक्षम और शरीर की नियामक है।

## मन का मुख्य केन्द्र

मन चैतन्य के विकास का एक स्तर है इसलिए वह ज्ञानात्मक है। उसका कार्य स्नायुमण्डल, मस्तिष्क और चिंतन-योग्य पुद्गलों की सहायता से होता है इसलिए वह पौद्गलिक भी है। हमारी शारीरिक और मानसिक-दोनों प्रकार की क्रियाएं स्नायुमण्डल के द्वारा संचालित एवं नियन्त्रित होती हैं। मस्तिष्क के दो भाग हैं-

## 1. बृहन्मस्तिष्क 2. लघु मस्तिष्क

ज्ञानवाही स्नायु बृहन्मस्तिष्क तक अपना सन्देश पहुंचाते हैं और उसके ज्ञान प्रकोष्ठ क्रियाशील हो जाते हैं। मन का मुख्य केन्द्र यह बृहन्मस्तिष्क है। बृहद् मस्तिष्क के द्वारा जो चैतन्य प्रकट होता है, जिसमें त्रैकालिक ज्ञान की क्षमता होती है, उसका नाम है मन।

## मन का काम

मन क्रियातंत्र का एक अंग है। यह एक कर्मचारी है। इसका काम है स्वामी के निर्देशों का पालन करना। यह न अच्छा करता है और न बुरा। अच्छे या बुरे का सारा दायित्व स्वामी का होता है, कर्मचारी का नहीं। मन एक नौकर है। इसका काम है स्वामी की आज्ञा का पालन करना, चित्त के निर्देश की क्रियान्विति करना। अच्छे-बुरे का दायित्व इस पर नहीं है किन्तु सारा दोष मन पर ही मढ़ा जाता है। यही सामने आता है। काम करने वाला ही सामने आता है, आदेश देने वाला सामने नहीं आता, वह पर्दे के पीछे खड़ा रहता है। व्यवहार में भी देखते हैं-नौकर किसी का आदेश लेकर आता है और वह आदेश प्रिय नहीं होता है तो सबसे पहले नौकर ही रोष का भाजन बनता है। सारा रोष उस पर उतर आता है। प्राचीन काल में दूत एक राजा का संदेश लेकर दूसरे राजा के पास जाता था। यदि वह संदेश प्रतिकूल होता तो राजा सोचता-इस दूत को मार डालना चाहिए। किन्तु उस समय राजाओं के बीच ऐसी संधि होती थी, जिसके कारण दूत को नहीं मारा जाता था। मन के साथ भी चित्त की सन्धि है। वह बेचारा दूत है। अनुकूल और प्रतिकूल निर्देशों का वह उत्तरदायी नहीं है, वह मात्र संदेशवाहक है। यदि मन के साथ कोई संधि नहीं होती तो मन को कभी मार डाला जाता। वह निर्दोष है, फिर भी सारा दोष उसी का माना जाता है। अध्यवसाय और चित्त उसे जो काम सौंपते हैं, उसका वह निर्वाह मात्र करता है।

## मन का अर्थ

मन का अर्थ है-संकल्प-विकल्प। मन का अर्थ है-स्मृति और चिंतन। मन का अर्थ है-कल्पना। मन तीन कालों में बंटा हुआ है। जो अतीत की स्मृति करता है, उसका नाम है-मन। जो भविष्य की कल्पना करता है, उसका नाम है-मन। जो वर्तमान का चिंतन करता है, उसका नाम है-मन। तीनों चंचलताएं हैं। जब स्मृति, कल्पना और चिंतन नहीं होते तब मन नहीं होता। जब मन होता है तब स्मृति, कल्पना अथवा चिन्तन अवश्य होता है। ऐसी स्थिति में मन को स्थिर करने की बात प्राप्त नहीं हो सकती। मन को स्थिर करने की बात केवल एक भ्रांति है। इसका मिटना आवश्यक है।

हम मन को जिस रूप में बदलना चाहते हैं, बदल लेते हैं। मन एक होता है।



आचार्य महाप्रज्ञ



उसमें असंख्य पर्याय हैं। वह भिन्न-भिन्न आकारों में बदलता है। हम जैसा चाहते हैं, वह उसी प्रकार का आकार लेना शुरू कर देता है। यह मन की विशेषता है।

**मन की भूमिकाएं**

मन की दो भूमिकाएं हैं। एक है व्यग्रता की भूमिका और दूसरी है एकाग्रता की भूमिका। व्यग्र मन अर्थात् एक अग्र-आलंबन पर न टिकने वाला मन। नाना अग्रो-आलंबनों पर भटकने वाला मन। उसका भटकाव कभी नहीं मिटता। एकाग्रमन अर्थात् एक ही अग्र पर टिकने वाला मन। इसमें भटकाव मिट जाता है।

जितनी व्यग्रता होती है उतनी ही लक्ष्य से दूरी बनी रहती है। व्यक्ति ध्येय के निकट नहीं पहुंच पाता। ध्येय तक पहुंचने के लिए व्यग्रता को कम करना होता है।

**मन का स्थान**

एक प्रश्न है-मन कहाँ है? इस सम्बन्ध में चार विचारधाराएं हमारे सामने हैं-

- मन समूचे शरीर में व्याप्त है।

- मन का स्थान हृदय के नीचे है।

- मन हृदय-कमल के बीच में है। हृदय कमल की आठ पंखुड़ियां हैं, वहां मन है। कुछ योगाचार्यों का मत है-बाएं फेफड़े में जहां हृदय है, उसके एक इन्च नीचे मन का स्थान है।

- वर्तमान शरीरशास्त्र का अभिमत है कि मन का स्थान मस्तिष्क है।

वस्तुतः ये सारी सापेक्षताएं हैं। यदि हम कहें कि मन समूचे शरीर में व्याप्त है तो वह सापेक्ष ही होगा। हमारे स्नायु-संस्थान में जितने भी ग्राहक स्नायु हैं, जो बाह्य विषयों को ग्रहण करते हैं, उनका जाल समूचे शरीर में फैला हुआ है। वे शरीर के सब भागों से ग्रहण करते हैं। इस प्रकार मन का शासन सर्वत्र व्याप्त है। राजा अपनी राजधानी में बैठा है। यदि पूछा जाए-राजा कहाँ है तो कहा जा सकता है-जहां तक राज्य की सीमा है वहां तक राजा है। वह भले ही राजधानी में हो किन्तु उसका शासन सारे राज्य की सीमा में चलता है इसीलिए राजा सर्वत्र व्याप्त है।

‘मन हृदय के नीचे है’-यह भी सापेक्ष है। सुषुम्ना की एक धारा हृदय को छूती हुई जाती है। उसका हृदय के साथ सम्पर्क है इसीलिए हृदय को मन का केन्द्र मानना बड़े महत्व की बात है। वह भावपक्ष का मुख्य स्थान है।

**शरीरविज्ञान की दृष्टि**

शरीर में दो ज्ञानकेन्द्र होते हैं-एक मस्तिष्क या बृहद् मस्तिष्क, दूसरा मेरुदंड। ये दो मुख्य केन्द्र हैं। सारे शरीर में तंतुओं का एक जाल जैसा बिछा हुआ है। उन तंतुओं में दो प्रकार के तंतु हैं-एक ज्ञानग्राही और एक ज्ञानवाही। मूली की जड़ में रेशे होते हैं, जो रस का आकर्षण करते हैं, रस को खींचते हैं। उसी प्रकार हमारे तंतुओं में एक रेशे जैसे ज्ञानग्राही तंतु होते हैं। वे तंतु विषय को ग्रहण करते हैं और उनके द्वारा गृहीत विषय को ज्ञानवाही तंतु मस्तिष्क तक पहुंचा देते हैं मेरुदंड के माध्यम से। ये ज्ञानवाही तंतु (Sensory Nerves) कहे जाते हैं। बृहद् मस्तिष्क का जो मध्यभाग है, उसे भेजा-कारटेक्स कहा जाता है। ज्ञानग्राही तंतु विषय को पकड़ते हैं, फिर ज्ञानवाही तंतु उसे ले जाते हैं और मस्तिष्क के कारटेक्स तक पहुंचा देते हैं। फिर अनुभव होता है, प्रत्यय होता है।



एक काम होता है ज्ञान का और दूसरा काम होता है चेष्टा का। मस्तिष्क में दो केन्द्र हैं-एक ज्ञानकेन्द्र (Sensory Centre) और एक चेष्टाकेन्द्र या क्रियाकेन्द्र (Motor Centre)। ज्ञानकेन्द्र का काम है ज्ञान को ग्रहण कर लेना। फिर अनुभव का आदेश होता है, चेष्टाकेन्द्र को, क्रियाकेन्द्र को। वह फिर प्रवृत्ति करता है। पैर में कांटा चुभा, कांटा चुभते ही जो चुभन हुई, उसका ज्ञान ठेठ मस्तिष्क तक पहुंच जाता है। वहां से हाथ को आदेश मिलता है कि कांटे को निकालो। चेष्टाकेन्द्र सक्रिय हो जाता है। क्रियाकेन्द्र का आदेश होता है और क्रियावाही तंतु सक्रिय होकर कांटे को निकाल देते हैं। यह सारी व्यंजन से लेकर क्रिया करने तक की प्रक्रिया है।

**प्रत्यय: इन्द्रियजन्य ज्ञान**

यह है हमारे शरीर की प्रक्रिया-ज्ञान करने की और क्रिया करने की। सर्दी का मौसम है, ठंडी हवा चल रही है। हमें सर्दी लग रही है। यह है प्रत्यय या निर्विकल्प प्रत्यक्ष। यह इन्द्रियजन्य ज्ञान है। मनोविज्ञान की भाषा में इसे प्रत्यय (Percept) कहते हैं। यह इन्द्रिय का सम्यक् बोध है। इसके बाद हमारा जो प्रत्यय हुआ, इन्द्रिय का ज्ञान हुआ, उसके साथ फिर मन जुड़ता है। हमारी भाषा में पहले व्यंजन होता है। व्यंजन का मतलब है-विषय के पुद्गलों का ग्रहण होकर मस्तिष्क तक पहुंच जाना। फिर उस व्यंजन का बोध होता है। पहले मन का योग नहीं, केवल इन्द्रियों का ज्ञान रहता है। यहां आते-जाते मन साथ जुड़ जाता है और वह मानसिक विषय बन जाता है। हम उससे आगे चलते हैं। मन साथ में जुड़ा तब उस विषय में तर्क, ऊह अपोह होता है, निर्माण होता है और उसके बाद धारणा हो जाती है, अनुभव का संचय हो जाता है, शक्ति का संचय हो जाता है।

**संस्कार, धारणा और स्मृति**

शक्ति-संचय तक हम एक कक्षा में पहुंच जाते हैं। प्रत्यय और प्रत्यय से शक्ति-संचय यानि धारणा। उसके बाद अगली प्रक्रिया शुरू होती है मन की। धारणा हो गयी। हमारे मस्तिष्क में धारणा के प्रकोष्ठ हैं। प्रत्यय आता है और तत्काल चला जाता है। प्रत्यय सामने नहीं रहता। हमने एक व्यक्ति को देखा। व्यक्ति चला गया। किन्तु प्रत्यय या निर्विकल्प ज्ञान अपने संस्कार छोड़ जाता है। मस्तिष्क में एक परिवर्तन होता है कि वह वहां संचित रह जाता है। अब क्या होता है? प्रत्यय तो चला गया किन्तु हमारे मन में एक प्रतिमा बन गयी। दूसरी कोई उत्तेजना सामने आती है, वह धारणा फिर जागृत हो जाती है। उसे हम कहते हैं स्मृति। संस्कार के जागरण से होने वाला संवेदन स्मृति कहलाता है। संस्कार जागा, जो वासना में था, वह जागृत हुआ, स्मृति हो गई। संस्कार और वासना का एक नाम है अविच्छ्युति। जो अनुभव हुआ, वह च्युत नहीं होता, टिका रह जाता है और वही हमारे सामने स्पष्ट होता रहता है।

**मन की व्यापकता : विषय की दृष्टि**

इन्द्रियों के विषय केवल प्रत्यक्ष पदार्थ बनते हैं। मन का विषय प्रत्यक्ष और परोक्ष-दोनों प्रकार के पदार्थ बनते हैं। शब्द, परोपदेश या आगम-ग्रन्थ के माध्यम से अप्रत्यक्ष, अरसित, अग्रात, अदृष्ट, अश्रुत, अननुभूत, मूर्त और अमूर्त-सब पदार्थ जाने जाते हैं। यह श्रुतज्ञान है। श्रुतज्ञान केवल मानसिक होता है। कहना यह चाहिए-मन का विषय सब पदार्थ हैं किन्तु यह नहीं कहा जाता, इसका भी



एक अर्थ है। सब पदार्थ मन के ज्ञेय बनते हैं किन्तु प्रत्यक्ष रूप से नहीं-श्रुत के माध्यम से बनते हैं इसलिए मन का विषय श्रुत है।

श्रुतमनोविज्ञान इन्द्रिय-निमित्तक भी होता है और मनोनिमित्तक भी। इन्द्रियों के द्वारा शब्द का ग्रहण होता है इसलिए इन्द्रियां उसका निमित्त बनती हैं। मन के द्वारा सामान्य पर्यालोचन होता है इसलिए वह भी उसका निमित्त बनता है। श्रुत-मनोविज्ञान विशेष पर्यालोचनात्मक होता है-यह उन दोनों का कार्य है।

मन की व्यापकता : काल की दृष्टि

इन्द्रियां सिर्फ वर्तमान अर्थ को जानती हैं। मन त्रैकालिक ज्ञान है। स्वरूप की दृष्टि से मन वर्तमान ही होता है। मन मन्यमान होता है-मनन के समय ही मन होता है। मनन से पहले और पीछे मन नहीं होता। वस्तुज्ञान की दृष्टि से वह त्रैकालिक होता है। उसका मनन वार्तमानिक होता है, स्मरण अतीतकालिक, संज्ञा उभयकालिक, कल्पना भविष्यकालिक, चिन्ता-अभिनिबोध और शब्द-ज्ञान त्रैकालिक। त्रैकालिक संज्ञान में स्मृति और कल्पना का विकास होता है तथा उसमें भूत और भविष्य के संकलन की क्षमता होती है। इसलिए मन को दीर्घकालिक संज्ञान भी कहा जाता है।

विकास का तरतमभाव

प्राणीमात्र में चेतना समान होती है, उसका विकास समान नहीं होता। ज्ञानावरण मन्द होता है, चेतना अधिक विकसित होती है। वह तीव्र होता है, चेतना का विकास स्वल्प होता है। अनावरण दशा में चेतना पूर्ण विकसित रहती है। ज्ञानावरण के उदय से चेतना का विकास ढक जाता है किन्तु वह पूर्णतया आवृत कभी नहीं होती। उसका अल्पांश सदा अनावृत रहता है। यदि वह पूरी आवृत हो जाए तो फिर जीव और अजीव के विभाग का कोई आधार ही नहीं रहता। बादल कितने ही गहरे क्यों न हो, सूर्य की प्रभा रहती ही है। उसका अल्पांश दिन और रात के विभाग का निमित्त बनता है। चेतना का न्यूनतम विकास एकेन्द्रित जीवों में होता है। उनमें सिर्फ एक स्पर्शन इन्द्रिय का ज्ञान होता है। स्त्यानर्द्धि-निद्रा-गाढ़तम नींद जैसी दशा उनमें हमेशा रहती है, इससे उनका ज्ञान अव्यक्त होता है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-सम्पूच्छिम और पंचेन्द्रिय-गर्भज में क्रमशः ज्ञान की मात्रा बढ़ती है।

अव्यक्त और व्यक्त चेतना

अनावृत चेतना व्यक्त ही होती है। आवृत चेतना दोनों प्रकार की होती है-मन रहित इन्द्रिय ज्ञान अव्यक्त होता है और मानस ज्ञान व्यक्त। सुप्त-मूर्च्छित आदि दशाओं में मन का ज्ञान भी अव्यक्त होता है, चंचल-दशा में वह अर्ध-व्यक्त भी होता है।

अव्यक्त चेतना को अध्यवसाय, परिणाम आदि कहा जाता है। अर्ध-व्यक्त चेतना का नाम है-हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा। यह दो इन्द्रियों वाले जीवों से लेकर अगर्भज पञ्चेन्द्रिय जीवों में होती है। इसके द्वारा उनमें इष्ट-अनिष्ट की प्रवृत्ति-निवृत्ति होती है। व्यक्त मन के बिना भी इन प्राणियों में सम्मुख आना, वापस लौटना, सिकुड़ना, फैलना, बोलना, चलना और दौड़ना आदि-आदि प्रवृत्तियां होती हैं।

गर्भज पञ्चेन्द्रिय जीवों में दीर्घकालिकी संज्ञा या मन होता है। वे त्रैकालिक और आलोचनात्मक विचार कर सकते हैं। सत्य की श्रद्धा या सत्य का आग्रह रखने वालों में सम्यग्र-दृष्टि संज्ञा होती है। मानसिक ज्ञान का यथार्थ और पूर्ण विकास इन्हीं में होता है।

मानसिक विकास

मानसिक विकास के चार रूप हैं-

- औत्पत्तिकी बुद्धि-प्रतिभा या सहज बुद्धि।
- वैयक्तिकी बुद्धि-आत्मसंयम, अनुशासन या गुरु-सुश्रुषा से उत्पन्न बुद्धि।
- कार्मिकी बुद्धि-कार्य करते-करते अभ्यास से प्राप्त कौशल।



- पारिणामिकी बुद्धि- आयु की परिपक्वता के साथ बढ़ने वाला अनुभव।

मानसिक विकास सब समनस्क प्राणियों में समान नहीं होता। उसमें अनन्तगुण तरतमभाव होता है। दो समनस्क व्यक्तियों का ज्ञान परस्पर अनन्तगुण हीन और अनन्तगुण अधिक हो सकता है। इसका कारण उनकी आन्तरिक योग्यता, ज्ञानावरण के विलय का तारतम्य है।

मानसिक योग्यता के तत्त्व

मानसिक योग्यता या क्रियात्मक मन के चार तत्त्व हैं-

बुद्धि-इन्द्रिय और अर्थ के सहारे होने वाला मानसिक ज्ञान।

उत्साह-कार्यक्षमता की योग्यता में बाधा डालने वाले कर्म पुद्गल के विलय से उत्पन्न सामर्थ्य।

उद्योग-क्रियाशीलता।

भावना-पर-प्रभावित दशा।

बुद्धि का कार्य है-विचार करना, सोचना, समझना, कल्पना करना, स्मृति, पहचान, नये विचारों का उत्पादन, अनुमान करना आदि-आदि।

उत्साह का कार्य है-आवेश, स्फूर्ति या सामर्थ्य उत्पन्न करना।

उद्योग का कार्य है-सामर्थ्य का कार्यरूप में परिणमन।

भावना का कार्य है-तन्मयता उत्पन्न करना।

चेतना की विभिन्न प्रवृत्तियां

चेतना का मूल स्रोत आत्मा है। उसकी सर्वमान्य दो प्रवृत्तियां हैं-इन्द्रिय और मन। इन्द्रिय ज्ञान वार्तमानिक और अनालोचनात्मक होता है इसलिए उसकी प्रवृत्तियां बहुमुखी नहीं होती। मनस् का ज्ञान त्रैकालिक और आलोचनात्मक होता है इसलिए उसकी अनेक अवस्थाएं बनती हैं-

संकल्प-बाह्य पदार्थों में ममकार।

विकल्प-हर्ष-विषाद का परिणाम-मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं आदि।

निदान-सुख के लिए उत्कट अभिलाषा या प्रार्थना।

स्मृति-दृष्ट, श्रुत और अनुभूत विषयों की याद।

जाति-स्मृति-पूर्व-जन्म की याद।

प्रत्यभिक्षा-पहचान।

कल्पना-तर्क, अनुमान, भावना, कषाय, स्वप्न।

श्रद्धान-मानसिक रुचि।

लेश्या-मानसिक परिणाम।

ध्यान-मानसिक एकाग्रता।

स्मृति, जाति-स्मृति, प्रत्यभिक्षा, तर्क, अनुमान-ये विशुद्ध ज्ञान की दशाएं हैं। शेष दशाएं कर्म के उदय या विलय से उत्पन्न होती हैं। संकल्प, विकल्प, निदान, कषाय और स्वप्न-ये मोह प्रभावित चेतना के चिन्तन हैं। भावना, श्रद्धान, लेश्या



और ध्यान-ये मोह-प्रभावित चेतना में उत्पन्न होते हैं तब असत् और मोह-शून्य चेतना में उत्पन्न होते हैं तब सत् बन जाते हैं।

साधना का आधार

मन के स्वरूप को जानना इसलिए आवश्यक है कि वह हमारी साधना का मुख्य आधार है। उसी के आधार पर ध्यान करना है, उपलब्धियों तथा अनुपलब्धियों का लेखा-जोखा करना है। मन के साथ चेतना का योग न हो तो ध्यान की कोई आवश्यकता नहीं। फिर हम स्वयं सिद्ध बन जाते हैं। चेतना मन के साथ जुड़ी नहीं-इसका अर्थ है-मन सक्रिय होता ही नहीं। उस स्थिति में कोई विकल्प होता, संकल्प नहीं होता, चिन्ता नहीं होती। मन का यंत्र मृतवत् पड़ा रहता है। यह ध्यान की भूमिका है। यह शुद्ध उपयोग की भूमिका है। मन का स्वरूप चेतना की धारा से निर्मित होता है। वह अपने-आप में न कलुषित है और न निर्मल, न चंचल है और न स्थिर। जैसा उत्पादन होता है वैसा ही वह निर्मित हो जाता है।

अशान्ति क्या है ?

चेतना अतीतकालीन विभिन्न संस्कारों से प्रभावित होती है। उसकी निर्मल धारा आती है और मन के साथ योग करती है तो मन निर्मल बनता है, राग-द्वेष-रहित बनता है। चेतना के साथ मल आता है, आसक्ति आती है, अज्ञान आता है, राग-द्वेष आता है तो मन का स्वरूप दूसरा हो जाता है। निर्मल चेतना का योग भी मन में सक्रियता लाता है और मलिन चेतना का योग भी उसमें सक्रियता लाता है। सक्रियता दोनों ओर से आती है, किन्तु मन की स्थिति में अन्तर आ जाता है। उसका प्रवाह दो दिशाओं में विभक्त हो जाता है। राग-द्वेष-रहित चेतना का योग पर मन होता है पर आसक्ति नहीं होती।

राग-द्वेष-युक्त चेतना का प्रवाह आता है तब मन भी होता है और आसक्ति भी होती है। यही चंचलता है। इसकी अतिरिक्त मात्रा या पुनरावर्तन ही अशान्ति है। मानव मन की ग्रन्थियाँ

वस्तुतः कोई भी भौगोलिक राज्य उतना बड़ा नहीं है, जितना मनोराज्य है। कोई भी यान उतना द्रुतगामी नहीं है, जितना मनोयान है। कोई भी शस्त्र उतना संहारक नहीं है, जितना मनःशस्त्र है। कोई भी शास्त्र उतना तारक नहीं है, जितना मनःशस्त्र है। उसकी ग्रन्थियों को फैलाया जाए तो वे पाँचों महाद्वीपों में नहीं समा पाती। इस छोटे-से शरीर में इन असंख्य ग्रन्थियों की संहति बहुत ही आश्चर्यजनक है। वे मुकुलित रहती हैं। सामग्री का योग मिलने पर उनके मार्ग खुल जाते हैं। सामग्री का हमारे जीवन में बहुत बड़ा स्थान है। आत्मा की प्रत्येक प्रवृत्ति उससे प्रभावित है। समुदाय भी एक सामग्री है। इसके योग में मन की अनेक ग्रन्थियाँ संकुचित होती हैं तो अनेक विस्तार पाती हैं। मन विशाल होता है, समुदाय विघ्न नहीं बनता। मन छोटा होता है, समुदाय बाधक बन जाता है। परिवार में दो आदमी बढ़ते हैं तो पृथक्करण की प्रवृत्ति जाग जाती है। कुछ व्यक्तियों को पृथक्करण नहीं भाता, भले फिर दस व्यक्ति बढ़ जाएं। ये दोनों मन की संकुचित और विकुचित ग्रन्थियों के ही कार्य हैं।

जहां दस आदमी रहते हैं, वहां अवांछनीय भी कुछ हो जाता है। एक व्यक्ति

उसे देख तत्काल उबल पड़ता है और दूसरा उसका परिमार्जन करता है। ये दोनों मन की उष्ण और शीत ग्रन्थियों के ही परिणाम हैं।

आत्म-साक्षात्कार : अनात्म-साक्षात्कार

हमारे मन में हजारों-हजारों अवस्थाएं प्रतिदिन घटित होती हैं। एक घंटा में साठ मिनट होते हैं और इन साठ मिनटों में शायद सैंकड़ों घटनाएं घटित हो जाती हैं। बहुत कम लोग ऐसे होंगे, जिनके मन में हजारों घटनाएं न घटित होती हों। यथार्थ के जगत् में कितनी घटनाएं घटित होती हैं, नहीं कहा जा सकता, किन्तु मानसिक जगत् में हजारों घटनाएं घटित होती हैं। भोजन करने में दस-बीस-मिनट लगते होंगे किन्तु उस समय का लेखा-जोखा करें तो पता चलेगा कि खाने की घटना एक है किन्तु उस घटना की मध्यावधि में पचासों-सैंकड़ों और घटनाएं घटित हो जाती हैं। इसलिए कि हम बाह्य का साक्षात्कार कर रहे हैं। आत्म-साक्षात्कार से उल्टा है अनात्म का साक्षात्कार। जब मन बाह्य के साक्षात्कार में लगता है, तब हमारे मन में हजारों-हजारों घटनाएं घटित होती हैं। अकारण भय आ जाता है, अकारण प्रेम आ जाता है, अकारण ही शत्रुता का भाव आ जाता है। चलचित्र पर जितने रूप नहीं उभरते, उससे ज्यादा रूप हमारे मन के चित्रपट पर उभरते हैं।

आत्म-साक्षात्कार का मार्ग

बाह्य साक्षात्कार में बड़ी परेशानियाँ होती हैं। मन में जितने विकल्प उठते हैं, उतना ही मन अशान्त होता है। आदमी थक जाता है और बेचैनी का अनुभव करता है तब आदमी सोचता है कि दूसरे रास्ते से चलना चाहिए। वह आत्म-साक्षात्कार का रास्ता है। हम अनावश्यक विकल्पों को पुष्ट कर देते हैं। यह आत्म-साक्षात्कार की पहली भूमिका है। हम कुछ विकल्पों को पुष्ट कर देते हैं, भावित करते हैं। उन्हें हम कहते हैं-सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य। यह हमारी दूसरी भूमिका है। इसका अर्थ है-जो हजारों-हजारों अनचाही बातें आती थी, वे समाप्त हो जाती हैं और कुछेक बातों पर मन टिक जाता है। यह भी अन्तिम मंजिल नहीं है। हम आगे बढ़ते हैं आत्म-साक्षात्कार की तीसरी भूमिका की ओर। वहां जाने पर शुद्ध आत्मदर्शन होता है, जहां कोई विकल्प नहीं, कोई विचार नहीं, कोई संज्ञा नहीं और कोई अनुभव नहीं है। चैतन्य के सिवाय दुनिया में कुछ और है, इसका अनुभव भी खो जाता है। केवल चैतन्य, केवल चैतन्य और केवल चैतन्य। यह वह स्थिति है, जहां सोना अपने मल को खो देता है, मिट्टी अपने विकारों को खो देती है। मिट्टी के सैंकड़ों रूप बनते होंगे-सिकोरा, घड़ा आदि-आदि किन्तु वहां केवल मिट्टी रह जाती है। इस स्थिति में हम जितनी देर रहते हैं, उतनी देर आत्मा का साक्षात्कार होता है।

चैतन्य की चार क्रियाएं

जहां चेतना खण्डित होती है, वहां आनन्द भी खण्डित होता है। जहां चेतना अखण्ड, वहां आनन्द भी अखण्ड। जब हम शुद्ध चैतन्य का अनुभव करते हैं, तब कोरा आनन्द ही आनन्द रहता है। जानना, देखना, शक्ति का अनुभव और आनन्द का अनुभव-ये चैतन्य की चार क्रियाएं हैं। अचेतन में ज्ञान नहीं, दर्शन नहीं और आनन्द नहीं, केवल शक्ति है। शक्ति बहुत है। चेतन में अनन्त शक्ति है तो जड़ में भी अनन्त शक्ति है। पर चेतन में शक्ति के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ है, इसलिए उसका साक्षात्कार ही सत्य का साक्षात्कार है। □

# वाग्गुप्तता से क्या मिलेगा ?



**प्रश्न** किया गया-वङ्गुत्तयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?भंते! वचन-गुप्तता से जीव क्या निष्पन्न करता है?उत्तर दिया गया-वङ्गुत्तयाए णं निव्वियारं जणयइ। निव्वियारेणं जीवे वङ्गुत्ते अज्झप्पजोगज्झाणगुत्ते यावि भवइ। वाग्-गुप्तता से वह निर्विचार भाव को प्राप्त होता है। निर्विचार जीव सर्वथा वाग्-गुप्त और अध्यात्म योग के साधन-चित्त की एकाग्रता आदि से युक्त हो जाता है।

आदमी के पास भाषा लब्धि होती है। दुनिया में अनन्त प्राणी ऐसे हैं, जो बोल नहीं सकते, जिन्हें भाषा प्राप्त भी नहीं होती है। स्थावर जीव-पृथ्वी, पानी आदि जीवों को भाषा प्राप्त नहीं होती है। उनसे थोड़े विकसित जीव हैं-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, जैसे-लट, चींटी, मक्खी, मच्छर आदि प्राणियों में कुछ आवाज होती है किन्तु प्रायः हमारे लिए अस्पष्ट आवाज होती है। पशुओं की भी अपनी आवाज होती है। कोई विशेषज्ञ व्यक्ति ही उनकी आवाज के अर्थ को पकड़ सकता है। सारे मनुष्यों की भाषा को सारे मनुष्य भी नहीं जानते। पूरे विश्व में कितनी भाषाएं हैं। आदमी सीमित भाषा को ही समझता है और सीमित भाषाओं को ही बोल सकता है। मनुष्य को यह विचार करना चाहिए कि मुझे भाषा प्राप्त है। मैं बोल सकता हूँ तो मैं अपनी वाणी का दुरुपयोग नहीं करूँगा। कितने पुण्य के योग से मुझे वाणी मिली है तो उसका मैं पाप में प्रयोग नहीं करूँ, हिंसा में प्रयोग नहीं करूँ, किसी का बुरा हो, ऐसी बात कहने में अपनी भाषा का प्रयोग नहीं करूँ।

भाषा विचार संप्रेषण का सशक्त माध्यम है। हम अपने विचारों को भाषा के माध्यम से दूसरों तक पहुंचाते हैं। संकेत से कुछ विचार विनिमय हो सकता है, परन्तु सशक्त माध्यम भाषा है। चाहे वह बोलने के रूप में हो, चाहे लेखन के रूप में हो। अक्षरों को चाहे बोल दें, चाहे लिख दें। बात मूलतः एक ही है। अन्तर तरीके का है। एक भाषा को वाणी के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। एक भाषा को लेखन के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। हमारी भाषा कलात्मक बने। हम वाक्-निपुण बनें, वाक्-संयमी भी बनें। धार्मिक परम्परा में मौन का भी प्रयोग चलता है। अनेक-अनेक लोग मौन करते हैं। एक घण्टा, दो घण्टा, इस प्रकार प्रतिदिन मौन का अभ्यास करते हैं। वह भी वाणी संयम का प्रयोग है। मौन नींद में ही नहीं करना चाहिए, जागते हुए करना चाहिए। कई बार आदमी अकेला ही नींद में बोलने लग जाता है। नींद का मौन इतना महत्वपूर्ण नहीं होता जितना जागृत अवस्था का मौन होता है। अनावश्यक न बोलना भी एक प्रकार का मौन है। कुछ समय का मौन करना अच्छा है। उसके सिवाय अनावश्यक नहीं बोलने का अभ्यास करना चाहिए।

संस्कृत साहित्य में कहा गया है-गरौ गिरः पल्लवनार्थलाघवे। वाणी के दो दोष बताए गए हैं। पहला दोष है कि बात को बढ़ा-चढ़ा कर बताना। जो बात संक्षेप में ही कही जा सकती है उसे खूब विस्तार से बताना। यह वाणी का पहला विषय दोष है। दूसरा दोष है-निस्सार बात बोलना। बहुत बोलने पर भी कई बार बात में सार कुछ भी नहीं निकलता। बात को अनावश्यक कहना भी वाणी का विषय है। वाणी के दो गुण भी हैं। वे इनके ठीक विपरीत हैं-परिमित बोलना और सारपूर्ण बोलना। आदमी वाणी के दोषों का परित्याग करे और वाणी के गुणों को अंगीकार करे। आदमी यह सोचे कि अमुक बात को मैं कितने कम शब्दों में कह सकता हूँ। जो बात पांच वाक्यों में कही जाने वाली है। क्या मैं उस बात को तीन वाक्यों में कह सकता हूँ। ताकि सुनने वाले का भी समय बेकार न हो और मुझे भी बिना मतलब बोलने का श्रम न करना पड़े। एक वक्ता एक घण्टा बोल सकता है किन्तु यह भी अभ्यास रखे कि एक घण्टा की बात को अगर समय कम हो तो 10-15 मिनट में भी कितनी सारपूर्ण बात प्रस्तुत की जा सकती है।

आदमी को अपनी वाणी से सत्य बात कहनी चाहिए। जिस बात का पूरा पता न हो, पूरी जानकारी न हो, उस बात को नहीं कहनी चाहिए। **आचार्य महाश्रमण** पहले बात की खोज करे, फिर कोई बात करे अथवा

यह कह दे कि मुझे पूरा पता नहीं है। जो व्यक्ति सत्य बोलता है। उसका विश्वास भी बढ़ता है। जो आदमी बात-बात में झूठ का प्रयोग करता है। उसका विश्वास कम हो जाता है। गृहस्थ जीवन में सच्चाई का परिपूर्ण पालन करना सबके लिए संभव न भी हो किन्तु एक साधु के लिए तो सत्य भाषा का प्रयोग करना आसान है। साधुओं को न तो व्यापार करना, न टैक्स चुकाना। गृहस्थ लोग जो व्यापार-बंधा करते हैं। उन्हें कितनी-कितनी स्थितियों से गुजरना पड़ता है और कहीं-कहीं झूठ का सहारा भी लेना पड़ता है। परन्तु आदमी का दृढ़-संकल्प हो तो काफ़ी अंशों में गार्हस्थ्य में भी झूठ से बचा जा सकता है। कुछ कठिनाई आए तो आए। जीवन में कुछ कठिनाइयों को झेलना भी चाहिए। अच्छी बात के लिए, कुछ विशेष पाने के लिए कुछ कठिनाइयों को झेलने का उत्साह होना चाहिए।

धन सम्पत्ति है तो सच्चाई भी एक बड़ी सम्पत्ति है। आदमी पैसे की सम्पत्ति के लिए सच्चाई को बिल्कुल छोड़ दे, इसका मतलब एक छोटी सम्पत्ति पाने के लिए बड़ी सम्पत्ति को छोड़ दिया। इसे मन की दुर्बलता कहा जा सकता है।

आदमी बोलने से पहले सोचे, विचार करे फिर वाणी का प्रयोग करे। बिना सोचे समझे, बिना विचारे कुछ भी कह दिया जाता है तो लेने का देना पड़ सकता है इसलिए सोच विचार करके कोई बात प्रस्तुत करनी चाहिए। हिताहित का पहले विवेचन कर लेना चाहिए। जैन वाङ्मय में एक छोटी सी कहानी आती है-एक व्यक्ति पर-स्त्री के साथ मैथुन सेवन कर रहा था। किसी साधु ने उसे देख दिया। संयोग की बात, उस युवक ने भी यह देख लिया कि साधु ने मुझे देखा है। वह लज्जित हुआ और सोचने लगा कि साधु किसी दूसरे को कह देगा। मुझे बदनाम कर देगा। इसलिए मैं उसे मार डालूँ। युवक ने आगे जाकर मार्ग रोका और साधु से पूछा-अभी तुमने क्या देखा?साधु बड़ा संयमी था। उसने कहा-

बहुं सुणेहिं कण्णेहिं, बहुं अच्छीहिं पेच्छइ।

न य दिट्ठं सुयं सव्वं, भिक्खु अक्खाउमरिहइ।

कानों से बहुत सुना जाता है आंखों से बहुत देखा जाता है किन्तु सब देखे और सुने को कहना भिक्षु के लिए उचित नहीं है।

युवक ने यह बात सुनी। तब उसे विश्वास हो गया कि यह साधु मुझे बदनाम नहीं करेगा। इसमें वाणी का संयम है, विवेक है। वह साधु के चरणों में गिर गया और कहा-आप महान् हैं। मेरे मन में आपको मारने की बात आ गयी थी। उसके लिए मैं आपसे क्षमायाचना करता हूँ। आदमी को विचारपूर्वक बात कहनी चाहिए। हर कहीं हर कोई बात नहीं कहनी चाहिए।

वाणी संयम से निर्विचारता निष्पन्न होती है। हम बेकार की बातें करेंगे तो विकार उत्पन्न होने की संभावना पुष्ट हो जाएगी। हम वाणी का जितना संयम करेंगे उतनी ही समस्याओं से बच जाएंगे और विकार को पैदा करने की एक स्थिति का निरोध भी कर सकेंगे। हम जितना ज्यादा बोलते हैं उतना ही चंचलता को बढ़ावा देते हैं। जो लोग ध्यान की साधना करना चाहते हैं उन्हें मौन और वाणी संयम का भी अभ्यास करना चाहिए। वाणी संयम नहीं है तो ध्यान की साधना में भी कुछ बाधा उत्पन्न हो सकती है। हम जितना कम बोलेंगे उतना ही शान्ति और निर्विचारता की दिशा में आगे बढ़ सकेंगे और चित्त की एकाग्रता को प्राप्त कर सकेंगे।

□





# जरूरी है सम्यक् दर्शन

❖ साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा

एक किसान ने खेत में कुआँ खोदना प्रारम्भ किया। पांच हाथ गहरी मिट्टी की खुदाई की परन्तु पानी नहीं निकला। फिर उसने दूसरे स्थान पर खुदाई की। गड़ढा पांच हाथ गहरा हुआ परन्तु पानी की धार नहीं मिली। यह प्रक्रिया किसान ने पांच जगहों पर की परन्तु परिश्रम सार्थक नहीं हुआ, पानी की प्राप्ति का लक्ष्य पूरा नहीं हुआ। श्रम करनेवाले ने श्रम करने में कमी नहीं रखी, असफलता से हताश होकर भी वह नहीं बैठा, कार्य प्रारम्भ में दिशा भी सही मिली परन्तु कार्य को किस दिशा में आगे बढ़ाते रहना जरूरी था, इसका पूरा-पूरा उसे ज्ञान नहीं था। फलतः कार्य में सफलता नहीं मिल सकी। श्रम सार्थक नहीं हो सका। आधा-अधूरा ज्ञान किसी भी कार्य को सम्पूर्णता दे सके, यह संभव नहीं।

कोई चिकित्सा के क्षेत्र में जाता है, कोई तकनीकी की बारीकियाँ सीखने की इच्छा रखता है, कोई कला और साहित्य के क्षेत्र में विकास करना चाहता है, किसी की पाक-कला में अभिरुचि है, किसी को आध्यात्मिक शिक्षा में अभिरुचि है। हर व्यक्ति अपनी-अपनी मानसिक क्षमता एवं रुझान के अनुसार ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। पहले प्रारम्भिक एवं सामान्य स्तर का शिक्षण प्राप्त होता है, फिर शिक्षा में गहराई आती जाती है, फिर उस क्षेत्र में विशेषता प्राप्त करने का ज्ञान सीखा जाता है। ज्ञान प्राप्त करने का एक व्यवस्थित क्रम होता है। साल-छह महीने में किसी एक खास विषय का अच्छा संज्ञान प्राप्त हो जाए, यह संभव नहीं। ज्ञान की सम्पूर्णता के लिए और ज्ञान के ऊँचे पायदानों तक पहुँचने के लिए कम-से-कम सात-आठ वर्ष का समय तो लग ही जाता है। ज्ञान को जितना याद करते हैं, ज्ञान उतना ही स्मृतिजन्य होता जाता है। एक निश्चित समय की साधना और श्रम के बाद ज्ञान-संज्ञान प्राप्त होता है। कोई यह सोचे कि एक वर्ष कोई विषय पढ़ लूँ, दूसरे वर्ष किसी और विषय को पढ़ लूँ, तो इससे अधिकचरा ज्ञान प्राप्त होगा। जीवन में सफलता के लिए ज्ञान की जितनी गहराई चाहिए, वह नहीं मिल पाएगी। किस क्षेत्र में ज्ञान प्राप्त करना है, पहले यह निर्धारित कर लें फिर उसके लिए एक लम्बे समय तक अध्ययनरत रहें। तब यह प्राप्त ज्ञान जीवन को सही दिशा देने में और जीवन को अर्थवान बनाने में सार्थक होगा।

ज्ञान के दो प्रकार होते हैं-पल्लवग्राही ज्ञान और मूलस्पर्शी ज्ञान। किसी विषय की कुछ पंक्तियाँ पढ़ ली, किसी विषय का एक-दो पृष्ठ पढ़ लिया, इससे अल्पज्ञान प्राप्त होता है। शास्त्रों में इसे पल्लवग्राही ज्ञान की संज्ञा दी गई है। मूलस्पर्शी ज्ञान लम्बे समय के अभ्यास एवं बार-बार उसकी आवृत्ति से प्राप्त होता है। जिस प्रकार एक बीज से वृक्ष बनने की यात्रा में लम्बा समय लगता है। लम्बे समय के बाद ही जड़ें अताल-पाताल की गहराई में फैलती हैं। उसी प्रकार लम्बे समय के अभ्यास के बाद ज्ञान का भी विकास होता है। इस प्रकार के ज्ञान को तलस्पर्शी ज्ञान कहते हैं। आपने यदि निश्चित कर लिया कि आपको कुछ बनना है, आपको अपने कौशल से कुछ करना है तो पल्लवग्राही ज्ञान के लिए यत्र-तत्र हाथ न मारे, बल्कि पाँच-सात वर्षों के निरन्तर श्रम की बदौलत तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करें। श्रम की सतत गिरती बूँदें आपके कौशल का विकास करेगी, आपमें ज्ञान का रंग भरेगी और आपकी सतरंगी कर्तृत्व की दिशाएं प्रशस्त होगी।

पत्नी के कहने पर एक सेठ ने अपने साले को नौकरी पर रख लिया। कई वर्ष बीत गए। उसको पहले जितनी ही पगार मिलती रही। एक दिन पत्नी ने पति से कहा कि उसका भाई काम करते-करते काफी होशियार हो गया है। उसकी

पगार बढ़ाने पर विचार करना चाहिए। सेठ ने कहा कोई बात नहीं, अच्छी पगार कर देंगे परन्तु मेरे एक काम में इसे मदद करनी पड़ेगी। अपनी बेटी विवाह के योग्य हो गई है। मैं अच्छे लड़के की तलाश में हूँ। तुम्हारा भाई भी तो रिश्ते में उसका मामा लगता है। वह यदि अच्छा वर ढूँढ़ ले तो शीघ्र ही उसकी पगार बढ़ा दी जाएगी। पत्नी ने भाई को काम सौंप दिया। एक सप्ताह का समय बीता। शाम की बेला थी। सेठजी भोजन करने बैठे थे और पत्नी खाना परोस रही थी। इतने में भाई का आगमन हो गया। सेठजी ने सुखद संवाद सुनाने के लिए कहा। साले ने बताया कि वर ढूँढ़ने का काम हो गया है। सोलह वर्ष का लड़का नहीं मिला, इसलिए आठ-आठ वर्ष के दो वर ढूँढ़ लिए हैं। अपने भाई की मूर्खतापूर्ण बातें सुनकर पत्नी ने अपना सर पकड़ लिया। ज्ञान का होना आवश्यक है परन्तु उससे भी अधिक आवश्यक है सम्यक् ज्ञान का होना। ज्ञान के साथ सूझबूझ, विवेक, कौशल आदि गुणों का होना भी जरूरी है। तभी ज्ञान को सार्थक दिशा प्राप्त होती है। इस प्रकार के ज्ञान को शास्त्रों में 'सम्यक् ज्ञान' की संज्ञा दी गई है।

व्यक्तित्व निर्माण और जीवन की सार्थकता के लिए 'सम्यक् दर्शन' भी एक महत्वपूर्ण तत्व है। कोई व्यक्ति चाहे कितना ही बड़ा विद्वान् बन जाए, उसके नाम के साथ भले ही बड़ी-बड़ी उपाधियाँ लग जाए परन्तु सम्यक् दृष्टिकोण के अभाव में एक दृष्टि से वह अज्ञानी ही है। एक कहावत प्रचलित है- 'बुद्धि बड़ी या भैंसा।' बुद्धिमता, सूझबूझ एवं सम्यक् दृष्टिकोण ही ज्ञान को सार्थक दिशाएं देने में समर्थ होता है।

क्राइस्ट धर्म में एक प्रचलित कथा है। एक जन्मांध व्यक्ति प्रभु यीशू के पास आकर रोने और गिड़गिड़ाने लगा। यीशू ने उससे पूछा कि तुम क्या चाहते हो? व्यक्ति ने कहा कि मैंने दुनिया को कभी नहीं देखा, जन्मांध हूँ, प्रभु चक्षुदान करें। यीशू ने 'तथास्तु' कहा और व्यक्ति की दोनों आंख खुल गई। एक वर्ष बीता। एक दिन यीशू ने देखा कि कोई व्यक्ति एक वेश्या के पीछे दौड़ रहा है। गौर से देखा तो पता चला कि यह तो वही व्यक्ति है जो एक वर्ष पहले तक जन्मांध था। यीशू ने फिर भी उसे पास बुलाया और स्नेहभरे शब्दों से पूछा- 'क्या तुम वही व्यक्ति हो जो एक वर्ष पूर्व जन्मांध थे?' पहले तो युवक थोड़ा घबराया परन्तु फिर भी उसने साहस बटोरकर सचसच बतलाया। यीशू ने कहा कि तुम्हें आंख इसी कार्य के लिए मिली कि तुम वेश्याओं को देखो और उनके पीछे-पीछे दौड़ो, यह तो उचित नहीं है। व्यक्ति ने हाथ जोड़कर कहा कि प्रभो! मैंने बाहरी आंख तो प्राप्त कर ली परन्तु भीतरी आंख आपसे प्राप्त करना भूल गया। इसी भूल का यह दुष्परिणाम है। काश! बाहरी परिवेश देखनेवाली आंखों के साथ-साथ भीतर के परिवेश को भी देखने वाली आंखें होती। अभ्यास और निरन्तर के प्रयास से ज्ञान के चर्मचक्षु प्राप्त हो सकते हैं परन्तु उसके साथ-साथ अन्तर्चक्षु भी आवश्यक है ताकि सम्यक् दृष्टिकोण के द्वारा जीवन को सार्थक दिशा की ओर मोड़ा जा सके।

'सम्यक् दर्शन' के संदर्भ में कहा गया है- जो तत्व जैसा है, उसको उसी रूप में देखना सम्यक् दर्शन की पहचान है। सम्यक् दर्शन की उपलब्धि होने के बाद किसी प्रकार के निषेधात्मक भावों के चिन्तन का अवकाश नहीं रहता। जीवन को सार्थक बनाने के लिए सम्यक् दर्शन के अनुशीलन की आवश्यकता है।

जीवन विकास के लिए ज्ञान आवश्यक है। सार्थक विकास के लिए उसके साथ सम्यक् दर्शन की संयुति जरूरी है। तभी कर्तृत्व की लम्बी लकीरें खींच सकती है। परिवार, समाज और राष्ट्र के सामने आदर्श प्रस्तुत किया जा सकता है। □



# प्रेक्षाध्यान और अखण्ड व्यक्तित्व विकास

❖ मुनि धर्मेश

**जी**वन निर्वाह के लिए भौतिक संसाधन एवं जीवन में शान्ति के लिए आध्यात्मिक अनुभूति की आवश्यकता होती है। दोनों के संतुलन से ही जीवन में सार्थकता, समृद्धि व सफलता प्राप्त होती है, किन्तु अत्यधिक भौतिक पदार्थों की आकांक्षा से संतुलन बिगड़ जाता है। व्यक्ति भावात्मक रूपसे अस्थिर हो जाता है। इससे व्यक्ति का ग्रन्थि तंत्र गड़बड़ा जाता है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति का अनुकम्पी नाड़ी तंत्र अधिक सक्रिय हो जाता है। मांसपेशियाँ तनावग्रस्त हो जाती हैं। उसका व्यवहार भी असंतुलित हो जाता है। यदि व्यक्ति सही समय पर नहीं संभले तो पारम्परिक संबंधों में दरारें पड़ने लगती हैं। व्यक्तित्व विखण्डित हो जाता है। अखण्ड व्यक्तित्व निर्माण के लिए व्यक्ति को अपनी चेतना की क्षमता और स्वतंत्र इच्छाशक्ति का उपयोग करना होगा। पुनः सम्पूर्ण शारीरिक तंत्रों में संतुलन स्थापित करते हुए अखण्ड व्यक्तित्व निर्माण की दिशा में अग्रसर होना होगा। ग्रन्थि तंत्र व नाड़ी तंत्र में संतुलन लाते हुए मांसपेशियों को तनावमुक्त करना होगा।

प्रेक्षाध्यान व्यक्तित्व रूपान्तरण की एक शक्तिशाली प्रविधि है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें हम अपनी चेतना की विलक्षण क्षमता 'जागरूकता' का उपयोग करते हैं। इससे मांसपेशियों के तनाव को दूर करते हैं। नाड़ी-ग्रन्थितंत्र में संतुलन लाते हैं। अपने व्यवहार में परिवर्तन करते हैं। हम अपनी चेतना की शक्ति 'जागरूकता' का अपनी इच्छा से उपयोग करते हुए अपने अस्तित्व के विभिन्न स्तरों को देखते हुए अनुभव करते हुए उसमें रूपान्तरण घटित करते हैं। अपने व्यक्तित्व के विभिन्न स्तरों पर जागरूकता का अभ्यास इस पद्धति का आधार है। प्रेक्षाध्यान पद्धति के चार सहायक, आठ मुख्य एवं तीन विशिष्ट अंग हैं-

## 1.1 सहायक अंग

**आसन :** शरीर को स्वस्थ, सुदृढ़, स्थिर व साधनानुकूल बनाये रखने में सहायता करते हैं।

**प्राणायाम :** प्राणशक्ति को संतुलित व विकसित करने में सहायता करते हैं।

**ध्वनि :** विचारों को शान्त, मन को एकाग्र तथा बुरे कम्पनों से स्वयं की सुरक्षा करने में सहायता करती है।

**मुद्रा :** पवित्र भाव को बनाये रखने और प्राण प्रवाह को एक निश्चित दिशा देने में सहायता करती है।

## 1.2 मुख्य अंग

**कायोत्सर्ग :** व्यक्ति इसके द्वारा शरीर के प्रति जागरूक होकर अपने सुझावों द्वारा मांसपेशियों व स्नायविक तनावों को दूर कर स्वयं की अनुभूति करता है।

**अन्तर्यात्रा :** इसके द्वारा व्यक्ति अपनी शक्तियों का उर्ध्वारोहण करता है।

**श्वास प्रेक्षा :** इसमें श्वास के प्रति जागरूकता का अभ्यास किया जाता है जिससे एकाग्रता का विकास होता है।

**शरीर प्रेक्षा :** इसमें शरीर के प्रत्येक अंग के प्रति जागरूकता का अभ्यास किया जाता है। इससे प्राण का संतुलन व स्वयं की चेतना की अनुभूति होती है।

**चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा :** इसमें शरीर में निहित चेतना के विशिष्ट केन्द्रों पर जागरूकता का अभ्यास किया जाता है। इससे व्यक्ति की विशिष्ट क्षमताओं का

जागरण होता है।

**लेश्याध्यान :** इसमें अपने व्यक्तित्व की सूक्ष्म रंगीन तरंगों के प्रति जागरूकता का अभ्यास किया जाता है। इससे भावधारा निर्मल होती है। आभामण्डल विशुद्ध और तेजस्वी बनता है।

**अनुप्रेक्षा :** इसमें शाश्वत सत्य के प्रति जागरूकता का अभ्यास किया जाता है। इससे शाश्वत सत्य का बोध होता है। मन की मूर्च्छा टूटती है।

**भावना :** इसमें सद्विचारों का बार-बार पुनरावर्तन व अभ्यास किया जाता है। इससे सद् संस्कारों का निर्माण होता है।

## 1.3 विशिष्ट अंग

**वर्तमान क्षण की प्रेक्षा :** इसमें वर्तमान क्षण के प्रति जागरूकता का अभ्यास किया जाता है। इससे चेतना की अनुभूति प्रखर होती है।

**विचार प्रेक्षा :** इसमें अपने विचारों के प्रति जागरूक रहने का अभ्यास किया जाता है। इससे बुरे संस्कारों से मुक्त होने में सहायता मिलती है।

**अनिमेष प्रेक्षा :** पलक झपकाये बिना केवल जागरूकता का अभ्यास। इससे चेतना की शक्ति जागृत होती है। द्रष्टा का बोध विकसित होता है।

## 2.0 व्यक्तित्व : स्वरूप और संरचना

विभिन्न दर्शनों में व्यक्तित्व पर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से विचार हुआ है। प्रेक्षा प्रणेता आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने व्यक्तित्व के स्वरूप को आधुनिक संदर्भों में समझाते हुए बताया कि संसार में मुख्य रूप से दो प्रकार के तत्व हैं : सजीव और निर्जीव। सजीव वे तत्व हैं जिनमें चेतना है आत्मा है। निर्जीव वे पदार्थ हैं जिनमें आत्मा या चेतना नहीं है। हमारे व्यक्तित्व में भी दोनों प्रकार के तत्वों का संयोग है। आत्मा के साथ निर्जीव जड़ पदार्थ भी जुड़ा हुआ है। अध्यात्म विज्ञान के अनुसार आत्मा के तीन मुख्य गुण हैं-आनन्द, ज्ञान और शक्ति। इसी प्रकार व्यक्ति जब इन्द्रियों के माध्यम से जड़ को जानता है तब निर्जीव जड़ पदार्थ के भी मुख्य चार गुणों का बोध करता है-स्पर्श, रस, गंध और वर्ण। आत्मा और जड़ के संयोग से हमारे व्यक्तित्व में छह तत्वों का उद्भव होता है-प्राण, शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और भाव। इन सब स्तरों पर हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व संचालित होता है।

## 2.1 स्वतंत्र व्यक्तित्व

सामान्यतया व्यक्ति इन्द्रियों के स्तर पर जीता है एवं इन्द्रियों के माध्यम से ही पदार्थों को जानता है। इनके गुण-स्पर्श, रस, गंध और वर्णों का अनुभव करता है। यदि यह अनुभव मन के प्रतिकूल होता है तो व्यक्ति में अप्रियता के भाव पैदा होते हैं। वह उसके लिए दुःख का कारण बनता है। वह उससे बचने का प्रयास करता है। यदि इसके विपरीत पदार्थ का अनुभव मन के अनुकूल होता है तो उसके भीतर प्रियता के भाव पैदा होते हैं। वह सुखानुभूति का कारण बनता है। वह उसको बनाये रखना चाहता है। बार-बार चाहता है। पदार्थ से सुख की



अनुभूति भी उसके एक सीमा तक उपयोग/उपभोग करने से ही प्राप्त होती है। अन्यथा वह भी दुःख का कारण बन जाती है। जैसे किसी व्यक्ति को मिष्ठान्न अत्यधिक प्रिय है। यदि उसको भी वह सीमा से या संयम से खाये तभी वह उसके लिए सुखद होगा। सीमा से अधिक खाने पर वही उसके लिए दुःख का कारण बन जाएगा। अतः स्वतंत्र व्यक्तित्व विकास का पहला सूत्र है-पदार्थों के उपभोग में संयम का अभ्यास।

जीवन पदार्थ के बिना नहीं चल सकता किन्तु पदार्थ के प्रति अत्यधिक आसक्ति और इन्द्रिय सुखों में वृद्धि से व्यक्ति जीवन में आनन्द और शान्ति से वंचित हो जाता है। वह अपने वास्तविक स्वरूप/सत्य का बोध नहीं कर पाता। जितनी-जितनी आसक्ति बढ़ती है उतना-उतना असंयम और दुःख बढ़ता है। इससे शक्ति का ह्रास होता है, तनाव व थकान में वृद्धि होती है, जागरूकता में कमी आती है। स्वार्थपरकता बढ़ती है। वह दूसरों के हितों को भी बढ़ावा मिलता है। इससे आन्तरिक शान्ति और आनन्द की अनुभूति नहीं हो सकती। इससे कृत्रिम आवश्यकताएं और मांग ही बढ़ेंगी। इससे प्रकृति का दोहन ही बढ़ेगा। सामाजिक और वैयक्तिक स्वास्थ्य में भी गिरावट आयेगी।

मूलतः आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न है किन्तु कर्मों के बन्धन के कारण हमारे व्यक्तित्व में आत्मा स्वतंत्र नहीं है। अर्थात् हम स्वतंत्र नहीं हैं। पदार्थों से प्रभावित होते हैं। शरीर के बंधन से भी बंधे हुए हैं। आत्मा की स्वतंत्र सत्ता को जानना, आत्मा के स्तर पर जीना, आत्मा को कर्मों के बंधन से मुक्त कर देना, स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास करना है। यह प्रेक्षाध्यान का मूल प्रयोजन है। इस यात्रा में दो बाधक तत्व हैं-प्रियता-अप्रियता के भाव तथा चंचलता।

जागरूकता के अभ्यास द्वारा चंचलता को एवं प्रियता एवं अप्रियता के भावों को कम करना अर्थात् अनासक्त चेतना और एकाग्रता का विकास करना-प्रेक्षाध्यान के विभिन्न अंगों के विकास का आधार है।

## 2.2 शरीर के स्तर

वातावरण के प्रति जागरूकता एवं उसका ज्ञान चेतना के द्वारा होता है। हमारे व्यक्तित्व में चेतना के साथ पदार्थ भी जुड़ा हुआ है। यह पदार्थ शरीर के रूप में है। इसके तीन प्रकार हैं-स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतम। स्थूल शरीर अस्थि, मांस आदि से निर्मित है। दिखाई देता है। उसे दार्शनिक भाषा में औदारिक शरीर कहा गया है।

सूक्ष्म शरीर का संबंध विद्युत ऊर्जा, प्राणशक्ति से है। सामान्यतया इसे आंखों से देख पाना संभव नहीं है, किन्तु आजकल अति संवेदनशील उपकरणों (कैमरों) द्वारा इसके फोटो लिये जाते हैं। जिसे किरलियन फोटोग्राफी कहते हैं। इसे दार्शनिक भाषा में तैजस् शरीर कहते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक शब्दावली में उसके बाह्य रूप को आभामण्डल कहा जाता है। यह स्थूल शरीर के चारों तरफ सूक्ष्म तरंगीय क्षेत्र के रूप में विद्यमान रहता है।

सूक्ष्मतम शरीर का संबंध हमारे भीतर विद्यमान कर्म संस्कारों से है। इसे कर्मण शरीर कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि इसमें अपने दैनिक जीवन के

प्रत्येक कार्य के सूक्ष्म संकेतों का निरन्तर अंकन व संचय होता रहता है। यह शरीर सूक्ष्मतम होता है। इसे भी आंखों से देखा नहीं जा सकता है। हमारी चेतना तीनों शरीरों में व्याप्त है किन्तु हमारी जागरूकता केवल स्थूल शरीर तक ही सीमित रहती है। हम अपने सूक्ष्म स्तरों तक जागरूक नहीं रह पाते। इस जागरूकता का विस्तार सूक्ष्मतम शरीर तक किया जा सकता है एवं इससे भी आगे अपने चैतन्य के प्रति भी निरन्तर जागरूक रहा जा सकता है।

## 2.3 चेतना के स्तर

हम आत्मा या शुद्ध चैतन्य के रूप में एक ओर अखण्ड है पर समझने की दृष्टि से चेतना को अनेक स्तरों पर विभाजित किया गया है। हमारे अस्तित्व से जुड़े हुए तीनों शरीर औदारिक, तैजस् और कर्मण के स्तर पर चेतना के भी अलग-अलग स्तर बनते हैं। जैसा कि समझाया गया है कि हमारे व्यक्तित्व के केन्द्र में है-आत्मा। कर्मण शरीर के स्तर पर जुड़ी हुई या संपृक्त चेतना स्तर को अध्यवसाय कहते हैं। इसी प्रकार तैजस् शरीर के साथ संपृक्त चेतना शरीर के स्तर पर संपृक्त चेतना को चित्त कहा गया है।

जागरूक चित्त के द्वारा जाना जाता है। सुषुप्त चित्त द्वारा ज्ञान नहीं हो

सकता। जागरूक चित्त द्वारा ही कर्मण शरीर का परिवर्तन किया जा सकता है। भीतर की प्रेरणाओं के क्रियान्वयन का निर्णय भी चित्त द्वारा ही होता है। यदि चित्त जागरूक नहीं है तो जैसी अच्छी या बुरी प्रेरणा भीतर से आती है वैसी ही क्रियान्विति हो जाती है। चित्त में यह शक्ति है कि वह एक समय में एक सूक्ष्म बिन्दु पर केन्द्रित हो सकता है और दूसरे ही क्षण एक विस्तृत क्षेत्र में भी फैल सकता है। जहां चित्त रहता है वहां का ज्ञान हो जाता है। वहां परिवर्तन घटित किया जा सकता है। जब चित्त

आन्तरिक क्रियाओं से जुड़ता है तो उनके प्रति हमारी जागरूकता बढ़ती है। वहां परिवर्तन और बदलाव आता है। प्रेक्षाध्यान में जहां परिवर्तन करना होता है वहां चित्त को केन्द्रित किया जाता है इससे व्यक्तित्व की विशिष्ट क्षमताओं का जागरण होता है। व्यक्तित्व का रूपान्तरण होता है। स्थूल चेतना से सूक्ष्मतम चेतना तक चित्त का विस्तार अखण्ड व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होता है।

लेश्या चित्त से सूक्ष्म है। सामान्यतया यह हमारे अनुभव में नहीं आ पाती है। हमारी जागरूकता केवल स्थूल और बाह्य जगत् तक सीमित होती है। सूक्ष्म और आन्तरिक जगत् की तरफ अभ्यास से जागरूकता को विस्तृत किया जा सकता है। लेश्या को, रंगीन प्रकाशमयी धाराओं को भी अनुभव कर सकते हैं। लेश्या के स्तर पर भी परिष्कार किया जा सकता है। लेश्या भीतर से अंकित और संचित संकेतों को रंगीन तरंगों के माध्यम से स्थूल शरीर तक लाता है एवं इसी प्रकार स्थूल स्तर की प्रवृत्तियों, क्रियाकलापों के संकेतों को रंगीन तरंगों के माध्यम से सूक्ष्मतम कर्मण शरीर के स्तर तक पहुंचाता है। अध्यवसाय का स्तर लेश्या से अधिक सूक्ष्म है। इसमें कर्म संस्कार, वृत्तियों के रूप में आगे बढ़ते हैं। तैजस् शरीर के स्तर पर आकर लेश्या का रूप ले लेते हैं। वे ही आगे चलकर औदारिक शरीर में भाव के रूप में प्रकट होते हैं, जो विचार, आचार और व्यवहार में अभिव्यक्त होते हैं।

□

# प्रेक्षा-कथा

संपादक - मुनि दुलहराज



## काम में लो



एक आदमी के घर में एक गाय थी। गाय क्रमशः दूध कम देने लगी। उसने सोचा, महीने बाद लड़की का विवाह आ रहा है और मैं रोजाना गाय दुहता चला जाऊंगा तो दूध कम हो जाएगा। अच्छा होगा कि मैं अभी दुहना बन्द कर दूँ ताकि एक साथ बहुत सारा दूध मिल जाए। सोचने का अपना-अपना प्रकार होता है। जब थोड़ा-थोड़ा मिलता था, वह एक क्रम था। जब दुहना बन्द कर दिया तो गाय का दूध देने का अभ्यास भी छूट गया। अब महीने के बाद जब गाय दुहने बैठा तो उसे कुछ नहीं मिला। गाय का सारा दूध सूख गया था।

न जाने हमारी भी कितनी शक्तियाँ और शक्ति के स्रोत इस प्रकार सूख जाते हैं, क्योंकि हम उन्हें काम में नहीं लेते।



## संस्कारों का संक्रमण

एक विदेशी सैनिक अधिकारी की अंगुलियाँ कट गयीं। अंगुलियों का प्रत्यारोपण किया गया। प्रत्यारोपण के बाद जब कभी वह सैनिक अधिकारी किसी गोष्ठी या भोज आदि में सम्मिलित होता तो उसके समीप आने वाले बड़े आदमी के पॉकेट के पास अंगुलियाँ चली जाती। सैनिक अधिकारी हैरान था। वह सोचता था कि ऐसा क्यों होता है? पर कुछ सूझता नहीं था।

एक दिन वह अस्पताल में डॉक्टर के पास पहुंचा। उसने डॉक्टर से पूछा, 'मेरे हाथ में जो अंगुलियाँ प्रत्यारोपित की गई हैं, वे किसकी हैं?' डॉक्टर ने खोज कर बताया कि वे अंगुलियाँ एक जेबकतरे की हैं। जेबकतरा मर गया, उसका शरीर नहीं रहा किन्तु उसके संस्कार अंगुलियों में मौजूद थे। इसलिए अंगुलियाँ दूसरे के पॉकेट के पास चली जाती थी।

इसी प्रकार दूसरे के संस्कारों का सूक्ष्म संक्रमण होता है। मांस खाने वाला पशुओं के मांस को ही नहीं खाता, उनके संस्कारों को भी खाता है।



## पछतावा

पुराने जमाने की बात है। मारवाड़ का एक किसान मेवाड़ गया। वहाँ उसने गन्ने का रस पीया, चीनी खायी और चीनी से बनी चीजें खायीं। उसने सोचा, जहाँ गन्ने होते हैं, वह संसार कितना मधुर होता है। बाजरी और गन्ने की कोई तुलना ही नहीं है। उसने गन्ने का बीज खरीदा और अपने गांव चला गया। घरवालों को एकत्र कर अपने मन की बात कही। उन्होंने कहा, बाजरी की फसल पकने को है, पहले इसे काट लें, फिर गन्ना बो देंगे। वह अपनी बात पर अड़ा रहा। सारी सुनी-अनसुनी कर दी। पाकासन्न फसल कट गयी। गन्ने की बुआई हो गई। पानी कम था, सिंचाई पूरी नहीं हुई। गन्ने की बुआई व्यर्थ। किसान के लिए बचा केवल पछतावा।

वर्तमान को छोड़ आगे दौड़ने वालों के लिए शेष बचता है पछतावा और पछतावा।





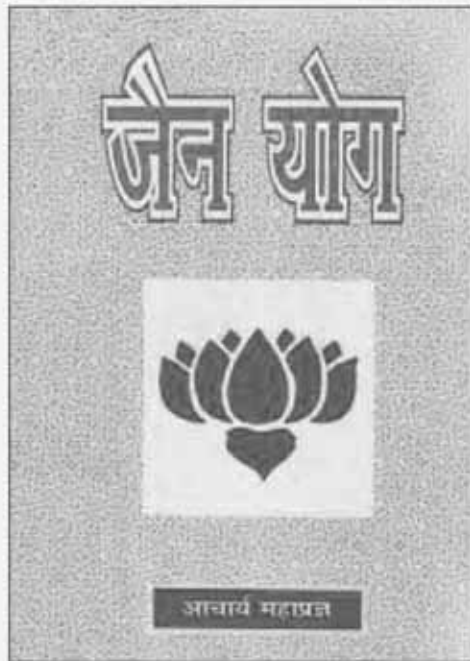
# जैन योग

- डॉ. दामोदर शास्त्री

संसार क्या है? जीव और अजीव की नाट्यशाला है। इस संसार में दो ही प्रकार के पदार्थ हैं- एक तो जीव, जो संसार के पदार्थों का उपभोग करने वाला है, दूसरा वह- जो जीव का उपभोग्य पदार्थ है, या फिर जीव के उपयोग में किसी-न-किसी रूप से उपकारी है। जीव और अजीव के परस्पर सम्बन्ध से ही इस संसार की प्रवर्तना अनवरत होती रहती है।

अध्यात्म-योग क्यों?

जीव है तो शुद्ध, चित्स्वरूप, आनन्द-सागर-(सच्चिदानन्द रूप), अखण्ड, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख आदि गुणों से युक्त, किन्तु संसार में जन्म लेते ही वह स्वरूप-च्युत हो जाता है।



मां के पेट से जन्म लेते ही शिशु को 'मैं' की अनुभूति होती है। क्रमशः अन्य आत्मेतर पदार्थों के प्रति भी उसकी ममत्व-बुद्धि जागृत हो जाती है। 'मैं' के साथ-साथ 'मेरा' यह भाव पैदा होता है। यह मेरा घर है, ये मेरे बान्धव हैं, यह मेरी सम्पत्ति है-इस प्रकार की तीव्र तृष्णा के वश में जीव धर्म-बुद्धि से हीन हो जाता है, जिससे संसार-बंध होता है। यही से वह उन्मार्ग का पथिक होता

चला जाता है। ममत्व वाले पदार्थों में कुछ ऐसे होते हैं, जो इन्द्रियों को सुखकर प्रतीत होते हैं और कुछ दुःखदायी भी। सुखकर पदार्थों में 'राग' (स्नेह) पैदा होता है तो दुःखदायी पदार्थों में 'द्वेष'। जहां राग होगा, वहां प्रतिद्वन्द्वी द्वेष भी नियमतः आ खड़ा होता है और दोनों के आश्रय से 'मन' का चंचल व क्षुब्ध होना स्वाभाविक है।

इस प्रकार प्रत्येक शरीरी जीव के लिए सांसारिक पदार्थ विभिन्न श्रेणियों में बंट जाते हैं : (1) इष्ट (रागयुक्त पदार्थ), (2) अनिष्ट (द्वेषयुक्त या इष्ट-वस्तु की प्राप्ति में बाधक पदार्थ), (3) उपेक्ष्य-मध्यश्रेणी वाले पदार्थ, जिन पर न प्रबल राग होता है और न प्रबल द्वेष ही। इष्ट-वस्तु की प्राप्ति से सुख और अनिष्ट वस्तु के संसर्ग से दुःख होता है। चूंकि सुख सभी को प्रिय और दुःख अप्रिय होता है, इसलिए सांसारिक प्रवृत्ति-निवृत्ति होती रहती है। इस

प्रकार, राग-द्वेष रूपी दो लम्बी डोरियों से मथनी के दण्ड की तरह, जीव संसार में घूमता रहता है और संसार-चक्र का परिवर्तन बन्द नहीं होता।

अगर सभी को सभी इष्ट-वस्तु मिल जाती तो संसार सुखी होता। किन्तु होता यह है कि जीव को कुछ इष्ट-वस्तु मिल भी जाती है तो असंख्य इष्ट वस्तुएं अप्राप्त रह जाती हैं। प्राप्त होने वाली इष्ट-वस्तुएं भी अभीष्ट समय तक स्थिर नहीं रह पाती। वे वस्तुएं भी रहें तो मानव-जीवन स्थिर नहीं रह पाता। जितने दिन तक जीवन स्थिर रहता भी है तो इस वस्तु के उपभोग में अनेक विघ्न बाधक बनते हैं। इधर, जीव की कामनाओं का अन्त ही नहीं। वह अतृप्त ही रहता है। विषय भोग क्षणमात्र सुख देते हैं तो बहुत काल तक दुःख के कारण भी बनते हैं। विषयों से थोड़ा बहुत जो सुख मिलता भी है तो वह बाधायुक्त और नश्वर होता है। जीवन की सुख-प्राप्ति की दौड़ में, पेट भरने, प्रशंसा, सम्मान, पूजा आदि के लिए तथा दुःख प्रतिकार हेतु अनेक शुभ-अशुभ कर्मों का बन्धन हो जाता है, जिसे भोगने के लिए जीव को नई गति में जन्म लेना पड़ता है। उस गति में भी पुराने कर्मफल भोगते हुए नवीन कर्मों का बन्धन भी जारी रहता है, इस प्रकार जन्म मरण का चक्र कभी बन्द नहीं हो पाता। इन सब कारणों से, अंततोगत्वा, संसार दुःख का पर्याय बन जाता है। मनीषियों की दृष्टि में सांसारिक पदार्थ सुख के कारण नहीं माने गये, जिसका उक्त कारण स्पष्ट है।

इस स्थिति में संसार से वैराग्य-भावना का उदय होना स्वाभाविक है। भारतीय तत्व-चिन्तकों का प्रयत्न रहा है कि ऐसा मार्ग खोजा जाये जिससे सांसारिक दुःखों से छुटकारा (मुक्ति) हो और साथ ही परमसुख की स्थिति प्राप्त हो। उनके चिन्तन, मनन और तत्व-साक्षात्कार का निष्कर्ष यह रहा कि दुःख की जड़ें बाह्य-वस्तुओं में नहीं, बल्कि सांसारिक प्रवृत्ति में -कषायेन्द्रियवशता में है, अज्ञान के कारण अन्तर में पैदा होने वाले राग व द्वेष में है। ये दुःख आत्मकृत ही हैं। परमसुख (आनन्द) का स्रोत सच्चिदानन्द आत्मा में है। संसार से मुक्ति पाने का उपाय यह है कि सांसारिक पदार्थों के प्रति राग-द्वेष का भाव हटाया जाय, असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति की जाय तथा परम सुख की स्थिति पाने के लिए निज शुद्ध आत्मा का साक्षात्कार किया जाय। शुद्ध आत्मा के साक्षात्कार के बाद, अनासक्त (ममत्वहीन) व्यक्ति के लिए संसार दुःखदायी नहीं रह जाता और परमानन्द की स्थिति हमेशा-हमेशा के लिए स्थिर हो जाती है।

चिन्तन की उक्त धारा इतनी व्यापक रही है कि कोई भी भारतीय धर्म हो, उसकी साधना का लक्ष्य सांसारिकता से-सुख-दुःख के चक्र से ऊपर उठना या छुटकारा पाना रहा है।

अध्यात्म-योग क्या है?

सांसारिकता का मूल कारण है-हमारी इन्द्रियों व मन का (आत्मेतर) सांसारिक पदार्थों के प्रति आसक्त होना। इन्द्रियों का स्वभाव है-बहिर्मुखता। यह आसक्ति ही सांसारिक पदार्थों से 'योग' करा देती है। इन्द्रियाधीन जीव में



ही राग-द्वेषादि उपजते हैं। उक्त 'योग' से ही राग-द्वेषादि में वृद्धि, उस वृद्धि से पुनः कर्मबन्ध-इस प्रकार 'संसार-योग' प्रवर्तित होता रहता है। अतः उक्त योग ही सांसारिकता का कर्मबन्ध द्वार है। साधना का लक्ष्य है-उक्त 'योग' को तोड़ना। चूंकि अनासक्ति के कारण 'योग' का अभाव हो जाता है और 'योग' के अभाव में कर्म-बंधन अतः अनासक्ति सहित इन्द्रिय-संयम को महत्व दिया गया।

मन, इन्द्रियादि का निर्विषय, निष्क्रिय रहना कठिन है, अतः सांसारिक पदार्थों से 'योग' तोड़कर इन्द्रिय व मन को कहां लगाया जाय-यह जिज्ञासा स्वाभाविक थी। समाधान यह निकला कि चित्त-मन पर निग्रह किया जाय, पहले इन्द्रियों को मन के अनुकूल बनाया जाये और वशीभूत मन को सांसारिक पदार्थों से निवृत्त कर आत्मचिन्तन की ओर मोड़ लिया जाय। दूसरे शब्दों में इन्द्रियादि को बहिर्मुखता से हटा कर अन्तर्मुखी बनाया जाय।

अन्तर्मुखता की स्थिति में सारा चिन्तन-मनन सांसारिक पदार्थों पर नहीं, वरन् आत्मपरक होगा। बहिर्मुखता की स्थिति में लौकिक संसर्ग से अत्यासक्ति तथा उत्तमोत्तम दिव्य विषय-भोगों से छूटने का भाव रहता है तथा आत्मा व अनात्मा के भेद-ज्ञान का प्रादुर्भाव व मध्यस्थ-वृत्ति की सत्ता दृढ़ता की ओर उन्मुख रहती है। अन्तर्मुखी व्यक्ति का चलना, उठना, बैठना आदि सभी क्रियाएं होंगी तो सही, पर वे संयत होंगी और राग-द्वेष की हीनता से अनासक्त भी। ऐसे आत्म-द्रष्टा के लिए समस्त जगत् इन्द्रजालवत् प्रतीत होगा-स्वात्मस्वरूप की प्राप्ति-हेतु उसकी अभिलाषा होगी, अन्य किसी वस्तु के लिए नहीं। जन-साधारण की भोग-मार्ग की ओर 'अनुस्रोत'-प्रवृत्ति रहती है, वहां अन्तर्मुखी व्यक्ति की 'प्रतिस्त्रोत' प्रवृत्ति देखी जाती है। लौकिक-संसर्ग से विरक्ति भी अन्तर्मुखी व्यक्ति का लक्षण है।

इन्द्रिय-संयम व तपस्यापूर्ण साधना के बल से नये कर्म बन्धन का रुकना तथा पुराने कर्मों का क्षय सरल हो जाता है। किन्तु इन्द्रियातीत आत्मा का साक्षात्कार या उससे 'योग' बैठाने की विधि क्या हो? इस दिशा में चिन्तन चला और आत्मध्यान व समाधि का एवं ध्यान की स्थिरता हेतु 'धारणा' आदि का उपदेश प्रतिफलित हुआ।

साधना की उच्च कोटि में पहुंचते-पहुंचते अन्तरंग विकल्प व शरीरादि-सम्बन्धी बाह्य विकल्प समाप्त हो जाते हैं। कर्म-बन्धनों के अभाव से वह व्यक्ति लोक-व्यवहार की सीमा-रेखा को लांघ जाता है। अन्त में ऐसी

स्थिति आ जाती है कि शुद्ध आत्मा का आराधक आत्म-स्वरूप की निरन्तर भावना व ध्यान के सतत प्रयास से आत्म-द्रष्टा और अन्ततः स्वयं आत्ममय व परमात्मा बन जाता है।

सांसारिक योग और आध्यात्मिक योग-दोनों हैं तो योग ही किन्तु दोनों में महान् अन्तर है। एक (बहिर्मुखी) तथा अनित्य है, तो दूसरा (आध्यात्मिक योग) मुक्ति का हेतु, निवृत्ति-परक (अन्तर्मुखी) तथा चिर-स्थायी व नित्य परिणति वाला है। मुक्ति-दायक योग को सांसारिक योग से पृथक् बताने के लिए इसे 'अध्यात्म-योग' (आत्म-परक योग) नाम दिया गया। यही

अध्यात्म-योग मोक्षार्थियों के लिए उपादेय है। इसे ध्यान-योग के नाम से भी अभिहित किया गया है।

अध्यात्म-योग-मूलतः जैनों की ही देन :-

अध्यात्म-विद्या विशेषतः क्षत्रियों की सम्पत्ति रही है। बृहदारण्यक उपनिषद् में प्रवाहण का कथन इस तथ्य को पुष्ट करता है। क्षत्रियों में आत्म-साक्षिक धर्म के प्रतिष्ठित होने का उल्लेख महाभारत में है।

जैन-परम्परा के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ (ऋषभदेव) क्षात्र-धर्म के प्रथम प्रवर्तक थे, और क्षत्रिय-जाति में श्रेष्ठतम् इक्ष्वाकुवंश के प्रथम व सर्वश्रेष्ठ सम्राट थे, अतः यह स्वयंसिद्ध है कि वे ही अध्यात्म-विद्या के आदि प्रवर्तक, उपदेशक रहे हैं।

उन्हें योगीश्वर, योगीनाथ के रूप में ख्याति भी प्राप्त है। ऋषभदेव ने अध्यात्म-विद्या का उपदेश दिया था-ऐसा भागवत-पुराण में उल्लेख है। इनके द्वारा उपदिष्ट उक्त अध्यात्म-विद्या की परम्परा वैदिक क्षत्रियों में भी प्रवर्तित होती रही, जिसका उदाहरण उपनिषदों में अध्यात्म-विद्या (पराविद्या) का निरूपण है। जैन-तीर्थंकरों का, क्षत्रिय-कुल में नियमतः जन्म लेने की मान्यता भी अध्यात्म-विद्या व क्षत्रिय-जाति के सम्बन्ध को पुष्ट करती है। इस सन्दर्भ में अन्य तथ्य भी मननीय हैं : जैसे, उपनिषदों में अध्यात्म-विद्या। ब्रह्म-विद्या के अधिकारी का जो स्वरूप निर्धारित किया गया है वह श्रमण-परम्परा के साधक के स्वरूप से साम्य रखता है। आत्मा ही ध्येय है, उसी का साक्षात्कार मुक्ति है, आत्मा ही परमात्मा है, पुण्य-पाप के ऊपर की स्थिति मुक्ति है-इत्यादि अध्यात्मवादी स्वर वैदिक उपनिषदों तथा जैन आगमों व साहित्य में समान रूप में प्रतिध्वनित हुए हैं। इसी प्राचीन परम्परा में (तथा उक्त इक्ष्वाकु-कुल में) अन्तिम तीर्थंकर अध्यात्मविद् (अयोग व्यव.1) भगवान् महावीर हुए थे, जिन्हें भी इसी अध्यात्म-साधना से परम-पद प्राप्त हुआ था। □



# आतापना : स्वास्थ्य और शक्ति की साधना

साध्वी कनकश्री

**जैनधर्म** की साधना पद्धति द्वादशांगी तपोयोग के रूप में प्रसिद्ध है।

उसका पांचवा अंग है कायक्लेश। इसका सामान्य अर्थ है विभिन्न आसनों द्वारा शरीर को साधना, काय-सिद्धि प्राप्त करना। देह की धातु को सिद्ध कर उसे मोक्ष साधना के अनुरूप बनाने के लिए अनेक आसनों का प्रावधान है। जैन योग में आसनों के साथ आतापना का भी महत्वपूर्ण स्थान है। भगवान महावीर ने कहा-निर्ग्रन्थ शीत और आतप-दोनों को सहन करो। सुकुमारता और सुविधावादी मनोवृत्ति साधना का बाधक तत्त्व है। महावीर ने कहा-‘आयावयाहि चय सोउमल्लं’ आतापना लो, सुकुमारता को त्यागो। इसी क्रम में उन्होंने साधकों को संदेश दिया कि-ग्रीष्मकाल में आतापना लो, हेमन्त ऋतु में अप्रावृत रहकर शीत को सहो तथा वर्षाऋतु में सुसंवृत होकर रहो। इस क्रम से लाखों साधकों ने आत्म-शक्तियों को जागृत किया था। प्रस्तुत लेख में आतापना के संबंध में कुछ चर्चा करना है।

गर्मी के दिनों में धूप में खड़े होकर या सूर्याभिमुख होकर ध्यान करना या तप्त-शिला पर लेट कर कायोत्सर्ग करना जैन श्रमण-श्रमणीगण के लिए सहजयोग जैसा था। जैन परम्परा में आतापना की पद्धति सर्वमान्य रही है। शरीर को अधिक से अधिक अनावृत रख कर सूर्य किरणों के सम्पर्क में रहने से तैजस् जागृत होता है। चित्त के मलों का निष्कासन होता है।

एक विशिष्ट योगज विभूति-शक्ति का नाम है तेजोलेश्या। उसके जागरण में आतापना की प्रमुख भूमिका रहती है। जैन आगमग्रन्थ भगवती में तेजोलेश्या को जागने की पूरी विधि उपलब्ध है। ठाणं में भी उल्लेख है-‘तिहिं ठाणेहि समणे णिग्गंथे संखित्त-विउल-तेउलेस्से हवई- तंजहा-आयावणताए, खंतिक्खमेणं, अपाणगेणं तवोक्कमेणं’ अर्थात् आतापना, तितिक्षाभाव तथा निर्जल तपस्या के प्रयोग से श्रमण-निर्ग्रन्थ संक्षिप्त और विपुल तेजोलेश्या को उपलब्ध हो सकता है। संक्षिप्त-विपुल तेजोलेश्या क्या है? यह जानना भी जरूरी है।

तेजोलेश्या एक विशिष्ट प्रकार की प्राण ऊर्जा है। तैजस् शक्ति है। इसका केन्द्र है नाभि का पृष्ठ भाग। खाए हुए आहार का हमारे शरीर में प्राण ऊर्जा के रूप में निर्माण होता है। उसका संचय होता है नाभि के पृष्ठ भाग में। योग की भाषा में इसे कुंडलिनी कहते हैं। योगशास्त्र के अनुसार जैसे वायु वेग से अग्नि प्रदीप्त हो उठती है, वैसे ही प्राणायाम प्रत्याहार, ध्यान, धारणा आदि

यौगिक क्रियाओं के अभ्यास से नागिक स्वरूपा यह प्राणऊर्जा प्रदीप्त होकर हृदयाकाश में प्रतिष्ठित हो जाती है। यही है जैन परम्परा में तेजोलेश्या और यही है योगमार्ग में चर्चित कुंडलिनी जागरण। हमारे स्थूल शरीर के भीतर एक सूक्ष्म शरीर है-विद्युतीय शरीर। उसे हम तैजस् शरीर कहते हैं। वह दो प्रकार का होता है। स्वाभाविक और तपोजनित। यह तपोजनित तैजस् शरीर ही तेजोलेश्या या तेजोलब्धि है। इससे आनंदमयी चेतना का जागरण होता है। यह अथाह शक्ति स्वरूपा है। इस शक्ति के दो रूप हैं-एक है अनुग्रह की शक्ति, दूसरी है निग्रह की शक्ति। अभिशाप और वरदान भी इसी शक्ति के चमत्कार

हैं। अनुग्रह और निग्रह के लिए जब इस शक्ति का प्रयोग किया जाता है, तब यह साधक/तपस्वी के शरीर से बाहर निकल कर अपना प्रयोजन सिद्ध करती है। अनुग्रह के लिए जब इसका सकारात्मक प्रयोग किया जाता है, यह तपस्वी के दाएं कंधे से बाहर निकलती है और जब निग्रह-किसी को पीड़ित या नष्ट करने के लिए इसका प्रयोग होता है तो यह तपस्वी के बाएं कंधे से बाहर निकलती है। ये दोनों ही शक्तियां अपना प्रयोजन सिद्ध कर, प्रयोक्ता के शरीर में पुनः प्रविष्ट हो जाती हैं। अनुग्रह करने वाली शक्ति शीत तेजोलेश्या तथा निग्रह करने वाली उष्ण तेजोलेश्या कहलाती है।

शीत तेजोलेश्या का रंग हंस जैसा श्वेत होता है। उसका स्वभाव शीतल और सौम्य होता है। उष्ण तेजोलेश्या का वर्ण सिंदूर जैसा लाल तथा स्वभाव रौद्र एवं दाहक होता है। यह महाज्वाला रूप, सूर्य बिम्ब की भांति दुर्धर्ष और परमाणु बम की तरह महाविनाशक होती है। शीत तेजोलेश्या के प्रयोग से उष्ण तेजोलेश्या निरस्त हो जाती है।

भगवान महावीर साधनाकाल में गोशालक के साथ विहार कर रहे थे। अग्नि

वैश्यायन नाम के एक तपस्वी शीर्षासन में स्थित हो साधना कर रहे थे। गोशालक ने अभद्र व्यवहार कर तपस्वी को अपमानित किया। तपस्वी तेजोलब्धि सम्पन्न थे। उन्होंने गोशालक पर अपनी प्रचण्ड तेजोलेश्या छोड़ दी। महावीर ने अपने ज्ञान बल से यह जाना। वह दाहक ज्वाला गोशालक तक पहुंचे, उससे पहले ही महावीर ने अपनी शीतल तेजोलेश्या का प्रक्षेपण कर, पहली शक्ति को निरस्त कर दिया और गोशालक को बचा लिया। तपस्वी ने महावीर की शक्ति का परिचय पाकर, क्षमा याचना की। जब गोशालक को यह तथ्य ज्ञात हुआ तब वह साग्रह अनुरोध करने लगा कि भंते! इस रहस्यमयी



महाशक्ति को कैसे जगाया जा सकता है? महावीर उसके आग्रह को टाल नहीं सके। उस शक्ति को जगाने की समग्र प्रक्रिया बताते हुए उन्होंने कहा-‘छह माह तक निरन्तर बेले-बेले (दो-दो दिन का उपवास) का निर्जल तप, पारणक में मुट्ठी भर उड़द के बाकुले और थोड़ा सा जल ग्रहण करना, इसके साथ ऊर्ध्वबाहुमुद्रा में सूरज की ओर मुंह कर खड़े-खड़े ध्यान करने से अपार उर्जामयी तेजोलेख्या जागृत होती है। यह इतनी विनाशक होती है कि हमारे प्रयोग से सोलह जनपदों को नष्ट किया जा सकता है।

गोशालक महावीर से पृथक् रहने लगा। इस तपोयोग की विधिवत् साधना कर उसने यह शक्ति अर्जित कर ली। कालांतर में उसने भगवान महावीर के सर्वानुभूति और सुनक्षत्र नाम के दो शिष्यों को इस तेजोलेख्या के प्रयोग से भस्म कर दिया। इसके पश्चात् उसने भगवान महावीर पर भी इस महाज्वाला का प्रक्षेपण कर दिया। अर्हत अनंतशक्ति सम्पन्न और निरुपक्रम आयुष्य वाले होते हैं। किसी निमित्त से उनकी अकाल मृत्यु नहीं हो सकती।

इस प्रसंग को यहां प्रस्तुत करने का मात्र यही प्रयोजन है कि आत्म-शक्ति, प्राणशक्ति और तैजसशक्ति के जागरण में तपस्या और ध्यान के साथ आतापना की भी विशिष्ट भूमिका रहती है। यहां एक बात और ज्ञातव्य है कि शक्ति शक्ति होती है उसका प्रयोग सृजनात्मक भी होता है और विध्वंसात्मक भी। इस शक्ति से किसी को मारा भी जा सकता है और बचाया भी जा सकता है। यह प्रयोक्ता के लक्ष्य और विवेक पर निर्भर करता है किन्तु एक अध्यात्म साधक के लिए इन योगज या तपोजनित शक्तियों का प्रयोग सर्वथा वर्जित है।

12वीं सदी के सूफी संत अब्दुल मुहम्मद को भी यह शक्ति रहस्य ज्ञात था, ऐसा उल्लेख मिलता है। उन्होंने कहा-हमारी दायीं-बायीं बगल के नीचे शक्तिशाली चैतन्य केन्द्र है। जैनधर्म के अनुसार तेजोलब्धि यहीं से निकलती है। दोनों हाथ ऊपर कर आतापना लेने से ये चैतन्यकेन्द्र विशेष रूप से जागृत हो जाते हैं।

**सूर्यप्रकाश, धूपसेवन-वैज्ञानिक दृष्टिकोण**

आतापना का जितना आध्यात्मिक मूल्य है, उसका शरीरशास्त्रीय और मानसशास्त्रीय मूल्य भी कम नहीं है। भाषा प्रयोग की भिन्नता होते हुए भी सभी एक ही तथ्य की परिक्रमा कर रहे हैं। सूर्य ताप और सूर्य प्रकाश के

प्रभावों पर लम्बी खोज और प्रयोगों के आधार पर डॉ. स्टीहॉक ने कहा-‘मानवीय स्वास्थ्य के लिए सूर्य प्रकाश अत्यन्त आवश्यक है।’ उन्होंने कहा-यदि पर्याप्त सूर्य ताप न मिले तो मात्र खाद्य पदार्थों से हमारा काम नहीं चलता। सूर्य-रश्मियों के योग से हमारा पाचनतंत्र स्वस्थ और सक्रिय रहता है। उन्होंने प्रयोग भी किये कि सोलह चूहों में से बारह को पर्याप्त भोजन दिया गया, पर वह केलिसियम और फास्फोरस रहित था। वे चूहे बीमार हो गये फिर उन्हें भोजन तो वही दिया गया, साथ में अंधेरे में रखा गया। वे बीमार हो गये। इसके बाद उन्हें धूप में रखा गया, वे स्वस्थ हो गये।

सोलह में से उन चार चूहों को कम तत्वों वाला भोजन दिया गया, वे बीमार हो गये। अंधेरे में रखा, अस्वस्थ हो गये। तीसरी बार के प्रयोग में सूरज की धूप में तो नहीं रखा, लेकिन जो खाद्य सामग्री उन्हें दी गई, उसे पहले लम्बे समय तक धूप में रखा जाता, उस भोजन से वे चूहे धीरे-धीरे स्वस्थ हो गये। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य सहित सभी प्राणियों को हर क्षण सूर्य शक्ति की अपेक्षा रहती है। वर्षा ऋतु के बाद बीमारियां इसलिए बढ़ती हैं कि वर्षाकाल में बादलों के कारण लम्बे समय तक धरती पर सूर्य की रश्मियों का फैलाव नहीं होता। धूप नहीं निकलती। पेड़-पौधे भी सूर्य से ही बढ़ते हैं। सूर्य प्रकाश और ताप वृक्ष-वनस्पतियों में प्राण-संचार करता है। सम्पूर्ण प्राणी-जगत् को शक्ति और स्फूर्ति प्रदान करता है। फ्रांस के डॉ. हॉपकिन्स के अनुसार-मानव शरीर एक ऐसा पुष्प है, जिसे खुलने और खिलने के लिए सूर्य प्रकाश की सर्वाधिक जरूरत होती है। सूर्य के बिना पृथ्वी पर जीवन की संभावना क्षीण हो जाती है। डॉ. स्काली ने कहा-रोग मुक्ति और स्वास्थ्य सुरक्षा में धूप की अनिवार्यता है।

आज सर्दी और गर्मी से बचना अमीरी की पहचान बन गयी है। तन पर अधिक से अधिक कपड़े लादे रहना और वातानुकूलित कमरों में बंद रहना आज की सभ्यता का अंग बन गया है। यह स्थिति शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक है। इसे रोग निरोधक शक्ति क्षीण होने लगती है। शरीर और वातावरण में रोगाणु और विषाणु पलने लगते हैं। जो सूर्य की किरणों से और धूप से बचाव करते हैं, उन्हें उन पोषक तत्वों से भी वंचित रहना पड़ता है जो बिना किसी मूल्य के अंतरिक्ष से निरन्तर बरसते रहते हैं। धूप एक कीमती टॉनिक है। इस ब्राह्मण्ड में विराट् ऊर्जा और अनन्त

## आत्मा पर ध्यान देने का प्रयास करें : आचार्य महाश्रमण

दुनिया में दो तत्त्व होते हैं-जीव और अजीव अथवा जड़ और चेतन। आदमी का जीवन भी इन दोनों तत्त्वों के संयोग से बना है। आदमी का शरीर जड़ है तो उसके भीतर विराजमान आत्मा चैतन्य है। आत्मा स्थाई है, शाश्वत है तो शरीर अस्थायी और अशाश्वत है। आदमी शरीर को संभालने के लिए कितना कुछ करता है, जबकि शरीर तो अस्थायी है जो कभी छूट भी जाएगा, किन्तु आत्मा शाश्वत है जो आगे भी रहेगी। इसलिए आदमी को अस्थायी के साथ ही स्थाई तत्त्व अर्थात् आत्मा पर भी ध्यान देने का प्रयास करना चाहिए। आदमी का धन, दौलत, वैभव, एश्वर्य, पद, प्रतिष्ठा एक दिन छूट जाएगा। आदमी के मृत्यु के बाद सबकुछ यहीं छूट जाएगा। धन, दौलत, शरीर यह सबकुछ आदमी को संयोग से प्राप्त हुआ है और जिसका संयोग होता है, उसका कभी न कभी वियोग भी होता है। इसलिए आदमी को अपनी आत्मा का ध्यान देना चाहिए और कुछ समय धर्म में लगाने का प्रयास करना चाहिए। आदमी आत्मा और शरीर को भिन्न मानकर अपनी आत्मा का कल्याण करने का प्रयास करना चाहिए। आत्मा के कल्याण के लिए आदमी को ध्यान, साधना, स्वाध्याय, जप और किसी की पवित्र सेवा के द्वारा धर्म का अर्जन करने का प्रयास करना चाहिए, जिसके माध्यम से आदमी की आत्मा का कल्याण हो सके। आदमी अकेलेपन का चिंतन करे तो वह मोह भाव को कम कर सकता है और आध्यात्म की साधना की ओर गति कर सकता है।



सामर्थ्य छिपा पड़ा है, वह हमें सूर्य रश्मियों के माध्यम से भरपूर मात्रा में मिलता रहता है। इसीलिए सूर्य सम्पर्क में रहना अति आवश्यक है।

#### सूर्यरश्मिचिकित्सा

कहते हैं- 'व्हेयर दि सन इज नोट इंटर डॉक्टर मस्ट' जहां सूर्य-किरणों को प्रवेश नहीं मिलता, वहां डॉक्टर को आसानी से प्रवेश मिल जाता है। सूर्य चिकित्सा विज्ञानियों का मानना है कि सूर्य किरणों के विधिवत् सेवन से सभी प्रकार के रोगों की चिकित्सा की जा सकती है। भूख की कमी, डिसेन्ट्री, खांसी, फोड़ा-फुंसी, नेत्र रोग, मानसिक असंतुलन, वायु विकार, शरीर के किसी भी अंग में दर्द-इन सब से सूर्य रश्मि चिकित्सा उपयोगी सिद्ध हो रही है। इन वर्षों में इसकी लोकप्रियता बढ़ रही है। केल्लियम तथा विटामिन डी की कमी में धूपसेवन अति उत्तम है। अस्थि निर्माण और उसकी मजबूती में केल्लियम की प्रमुख भूमिका रहती है। विटामिन डी के बिना केल्लियम का शरीर में अवशोषण नहीं होता। धूप सेवन से त्वचा के भीतर विटामिन डी का निर्माण होता है। प्राकृतिक चिकित्सा में धूप स्नान और धूप सेवन का अतिरिक्त महत्व है। प्रातःकालीन धूप सेवन रक्त शोधक, रोगनाशक और शक्तिदायक माना गया है। यह तन और मन दोनों को स्वस्थ और शक्तिशाली बनाता है।

#### सूर्यकिरण और रंग विज्ञान

मानवीय व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण घटक तत्व है रंग। रंगों में जीवन को अस्तव्यस्त या व्यवस्थित करने की अद्भुत क्षमता है। मानवीय व्यक्तित्व बहुरंगी होता है। मनुष्य शरीर के प्रत्येक अवयव का अपना स्वतंत्र रंग होता है, जैसे बालों का रंग नीला होता है, नाक में हरे रंग की प्रधानता होती है, जीभ का रंग नारंगी होता है। इन रंगों में बदलाव आता है तो वह रोगोत्पत्ति का लक्षण माना जाता है। रंगों को संतुलित कर रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है। व्यक्तित्व को संतुलित किया जा सकता है।

सूर्य-प्रकाश में नैसर्गिक रूप से सभी रंग मौजूद रहते हैं। 'प्रिज्म' सिद्धान्त के अनुसार सूर्य रश्मियां सतरंगी होती हैं। हल्के भारी रंगों के

सम्मिश्रण से करीब दस लाख रंग बन सकते हैं। उन सब रंगों का मनुष्य के स्वभाव, स्वास्थ्य, मन और भावनाओं पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। विज्ञान के अनुसार मौलिक रंग तीन हैं- लाल, नीला और पीला। आयुर्वेद में इन तीनों को क्रमशः पित्तप्रधान, वायुप्रधान और कफप्रधान माना गया है। इन रंगों की अल्पता या अधिकता त्रिदोष के उद्दीपन और उपशमन में निमित्त बनती है। उचित समय में उचित मात्रा में धूप सेवन तथा

सूर्यरश्मि चिकित्सा के द्वारा रंगों को संतुलित किया जा सकता है और आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है।

अमरीकी वर्ण चिकित्सा विशेषज्ञा इवान वर्ग विटन में पचास व्यक्तियों पर प्रयोग-परीक्षण के बाद सलाह दी कि सफेद व हल्के रंगों के सम्पर्क में अधिक रहने से शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य अच्छा रहता है। उसने अपने प्रयोग-परीक्षणों का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहा है-हल्का नीला रंग मस्तिष्कीय क्षमता, स्नेह, सौजन्य, शान्ति और पवित्रता को बढ़ावा देता है। उन्माद, सनक, आवेश, जड़ता आदि की स्थिति में पीले रंग को अधिक लाभप्रद माना है।

उदासी, हताशा आदि मनोरोगों के उपचार में लाल रंग का प्रयोग किया जाता है। इस सूर्यरश्मि

चिकित्सा या रंग चिकित्सा की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न है।

अमुक रंग के बल्ब से विद्युत प्रवाहित करना, रंगीन शीशे के माध्यम से सूर्य रश्मियों का संप्रेषण कर, जल, तैल आदि का प्रयोग करना इन अनेक रूपों में यह चिकित्सा विधि विकसित हुई है। पर इन सबके मूल में सूर्य का आतप ही है, जिसकी उपयोगिता को भगवान महावीर ने 2600 वर्ष पहले ही अनुभव के स्तर पर जाना था और उसे अपनी अध्यात्म साधना का अनिवार्य अंग बनाया था। आज वही आतापना-योग विज्ञान की कसौटी पर खरा उतर कर जन सामान्य के लिये भी उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

प्रस्तुत लेख का प्रतिपाद्य यही है कि निर्जल उपवास, विविध आसनों का प्रयोग और आतापना का प्रयोग-यह त्रिपुटी अध्यात्म साधक के लिए सिद्धियों का द्वार उद्घाटित करने वाली है।






Preksha Platinum Card  
VINOD LUNIA  
P-0035 2017 2026  
Preksha Meditation  
www.preksha.com

With Best Compliments from



श्रद्धावन्त



**OSWAL**  
Weldmesh Pvt. Ltd.

**SAPPHIRE**  
Weld & Wire Private Limited

17, Mill Road, Coimbatore - 641 001 Ph. : 0422-2395799/2399799

Works : S.F. No. 259, Thennampalayam, Arasur (Po), Coimbatore - 641 407

E-mail : vinodlunia@gmail.com, oswalweldmesh@gmail.com





# प्रेक्षा-दर्शन

## ● ध्यान से मन की शान्ति

स्वाध्याय और ध्यान से पूर्वसंचित कर्म क्षीण होते हैं। इसलिए मन की शान्ति चाहने वाला व्यक्ति स्वाध्याय करे। स्वाध्याय में उपयुक्त एकाग्रता प्राप्त होने पर ध्यान करते-करते जब एकाग्रता खण्डित होने लगे तब फिर स्वाध्याय में संलग्न हो जाए। इस प्रकार स्वाध्याय और ध्यान की आवृत्ति से मन की शान्ति प्राप्त हो जाती है।

A consistent study of the scriptures and regular meditation practice wears away karmic deposits. When you achieve a desired level of concentration in your studies, move to meditation. While meditating, and you feel your mind getting enfeebled, move back to studying. Alternating these activities will give you peace of mind.

## ● अहं को समाप्त करना जरूरी

जिस समाज में अहं की प्रबलता होती है, जिस संगठन में अहं को छूट मिल जाती है, वहां निश्चित ही संघर्ष होता है, टकराव होता है। दोनों के अहं परस्पर टकराते हैं और समाधि की बात समाप्त हो जाती है। जहां चित्त को समाहित करने की बात है वहां संघर्ष को समाप्त करना होता है। इसको समाप्त करने के लिए या तो अहं को सीमित करना होता है या अहं को विसर्जित करना होता है।

In any organisation or microcosm of society where ego comes to play, confrontation and infighting is inevitable. Just a spark of conflict destroys spirituality. The first condition for consolidating the consciousness is to end conflict. This is possible by letting go of the ego.

## ● तपस्या से आचरण होते महान्

जहां तपस्या नहीं, मध्यस्थता नहीं, निष्पक्षता नहीं और जहां रागद्वेष की प्रचुरता है। वह महान् आचरण नहीं हो सकता। वही आचरणों में सबसे बड़ा है जो समतापूर्ण हो।

An act that lacks equanimity and detachment, and which is motivated by passion, cannot be described as noble.

## ● पेट का स्वास्थ्य ठीक होना जरूरी

आहार का सम्बन्ध दोनों से है-शरीर का स्वास्थ्य और मन का स्वास्थ्य। दोनों जुड़े हुए हैं। शरीर के स्वास्थ्य का भी मुख्य संबंध है हमारे पेट से और मन के स्वास्थ्य का भी मुख्य संबंध है हमारे पेट से। यदि पेट वास्तव में ठीक रहता है तो दोनों बातें ठीक हो जाती हैं। तात्पर्य यह है कि पेट को ठीक करने का अर्थ है-भोजन को ठीक करना। भोजन ठीक नहीं है, और पेट ठीक नहीं है तो स्वास्थ्य ठीक नहीं है। पेट ठीक नहीं है तो मन की स्थिति भी ठीक नहीं है।

Food affects both physical and mental health, and both depend on the state of well-being of the stomach. Unsuitable food leads to stomach disorders, which in turn cause physical sickness mental disturbance.

*With Best Compliments from*

प्रेक्षाध्यान का प्रायोजन है अतेंद्रिय चेतना का विकास करना। अतेंद्रिय चेतना का अनुभव बहुत लोग नहीं करते। उन्हें पता भी नहीं चलता और करने वाला बता भी नहीं सकता कि उसका स्वाद कैसा है? उसका अनुभव कैसा है?



**अरविन्द संवेती**

अहमदाबाद

-आचार्य महाप्रज्ञ



## प्रेक्षा फाउंडेशन संबद्धता प्राप्त केन्द्र सूची

स्थान का नाम	समन्वयक का नाम	सम्पर्क सूत्र
लाडनूँ	डा. विजयश्री शर्मा	8233344482
मैहरोली	श्री मुकेश कुमार	9643300655
कोबा	श्री बाबूलाल सेखानी	9825033201
कृष्णबिहार	श्री जयचंद दुगड	9434213099
राजकोट	श्री चन्द्रकान्त कोटेचा	9824043363
चेन्नई	श्री माणिकचंद रांका	9440205427
नागपुर	श्री आनंदमल सेठिया	9373471831
अम्बाबाड़ी	श्री संतोष सुराणा	9426087220
इन्दौर	श्री राजेन्द्र मोदी	9993465883
सूरत	श्री जयन्तीलाल कोठारी	9377555545
विक्रोली	श्री मिश्रीमल चौधरी	9869990868
कांदीवली	श्री पारसमल दुगड	9004937723
कांदीवली	श्रीमती निर्मला दुगड	9004798179
दामोदरबाड़ी, कांदीवली	श्री पारसमल दुगड	9004937723
अशोकनगर कांदीवली	श्री पारसमल दुगड	9004937723
गौहाटी	श्री निर्मल चौरडिया	9435042723
रायपुर	श्री सुरेन्द्र ओसवाल	9425285121
चेन्नई	श्रीमती प्रियंका बोहरा	9840845337
बैंगलोर	श्रीमती पुष्पा गन्ना	9686366250
गंगाशहर	श्री जैन लूणकरण छाजेड	9887914000
मणिनगर, कांकरिया	श्री उम्पेद कोचर	9426412624
अल्थान, उधना	श्री मदनलाल दुधेडिया	9427113136

## ध्यान है चेतना का विस्तार

❖ साध्वी राजीमती

एक बहन ने स्वयं चौविहार मीन सहित रात के दो बजे खड़े होकर अनशन का संकल्प ले लिया। चौथा दिन चल रहा था। मैं दर्शन देने पहुंची। जाते ही उन्होंने संकेत से पूछा—(मुंह के हाथ लगाकर) आपने नाश्ता कर लिया? यह सुनते ही मैं सशक्त हो गई।

मैंने संकेत का अर्थ यह समझ लिया कि वे मुझसे कह रही हैं कि मुझे खाना खिलाओ। यह सुनकर मेरी धड़कन बढ़ गई। मैं अपने स्थान पर आ गई। लगभग एक घंटे तक अपने ध्यान में बैठी रही। इसी बीच मुझे प्रकाश की तरह चमकता ग्यारह पचीस का अंक दिखाई दिया। मैं तत्काल उठकर वहां पहुंची। लगभग सात मिनट उस समय बाकी थे। बहन ने (मेरी संसार पक्षीया मां) संकेत



किया, मेरी नाड़ी देखें। मुझे रजोहरण दें, मेरे बाल उतारें।

मैंने कहा—इतनी क्या जल्दी है?

बहन ने दोनों हाथ ऊपर करते हुए कहा—जा रही हूं।

केवल दो श्वास दिखाई दिए। जीवन यात्रा समाप्त हो गई।

वही समय था जिसका मुझे संकेत मिला था।

मुझे विश्वास था कि चेतना फैलाकर कहीं जाएगी और समाधान लाएगी। कभी-कभी चित्त बहुत जल्दी एकाग्र हो जाता है। मैं आज भी कभी स्वयं से पूछती हूं कि वह समाधान गुरु से मिला था अथवा ध्यान चेतना से आया था? कोई न कोई तो राज होगा ही।

ध्यान में जब चेतना का उदय और विस्तार होता है तब अपूर्व घटना-क्रम सामने आते हैं। अनेक बार ऐसे संकेत मिलते हैं कि सबकुछ चमत्कार-सा लगता है। ध्यान हमारी सुप्त शक्तियों के जागरण और दिव्य शक्तियों के संघर्ष का महत्वपूर्ण आलंबन है। □



*With Best Compliments from*

**VAISHNODEVI Lush Green**  
BUILDERS | DEVELOPERS | PROMOTERS

Regd. Office : Vaishnodevi Lush Green Pvt. Ltd.

459, 4th Floor, 12th Main, M. C. Layout Near Vijaynagar Post Office, Bangalore-560040 (Karnataka)

Ph. : 23146429, M : 9620799999, E-mail : vimalkataria9@gmail.com

**Vimal, Chirag, Yash Kataria**

Bemali-Bangalore

# विजातीय द्रव्य की उत्पत्ति और वृद्धि

✽ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

रोगों का प्रमुख कारण शारीरिक मल ही माना गया है। जब हम प्रकृति के नियमों के विरुद्ध आचरण करके अपना आहार-विहार दूषित बना लेते हैं और जिह्वा तथा भोगेन्द्रिय की तृप्ति के लिए आवश्यकता से अधिक भोज्य पदार्थों का प्रयोग करने लगते हैं तो हमारे शारीरिक अंगों पर अधिक भार पड़ता है और वे अपना काम ठीक ढंग से नहीं कर पाते। इन अंगों में मुख्य आमाशय को माना गया है, जो सब प्रकार के आहार को पचाकर उसके रस से देह की पुष्टि करता है। जब उसका कार्यभार बढ़ जाता है तो वह खाए हुए भोजन का रस पूर्णरूप से नहीं निकाल पाता और अर्द्धपक्व आहार ही हमारे मलाशय में पहुंच जाता है। ऐसा आधा पचा आहार मलाशय में पहुंचकर शीघ्र ही सड़ने लग जाता है और उसमें से गंदगी मिश्रित रस निकलकर रक्त में मिल जाता है : क्योंकि वह रक्तवाहिनी नसों द्वारा समस्त शरीर में संचरण करता रहता है और अपनी उस गंदगी को जगह-जगह छोड़कर अस्वास्थ्यकर अवस्था उत्पन्न करता है।

पर यह समझना कि मल केवल प्रतिदिन खाए जाने वाले भोजन से ही निकलता है, पूर्णतः ठीक नहीं है। भोजन से काफी मल अवश्य निकलता है, पर आंतों से छनकर जो मल निकलता है, वह भी परिमाण में कम नहीं होता। यही कारण है कि कई दिनों तक उपवास करने की दशा में भी प्रतिदिन कुछ मल निकलता ही रहता है।

शरीर के जीवकोश (सेल) हमेशा टूटते-फूटते रहते हैं। अगर वे ठीक समय से शरीर के बाहर न निकाल दिए जाएं तो वे भी मल की तरह विकार उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार शरीर के विभिन्न अंग-यकृत, गुर्दा, आमाशय, फेफड़ा आदि जो कार्य करते रहते हैं, उनकी कार्य-प्रणाली से भी कार्बोनिक एसिड, यूरिक एसिड, फास्फोरिक एसिड आदि कई विषाक्त द्रव्य उत्पन्न होते हैं, उनको भी बाहर निकालना आवश्यक होता है। चौथे नम्बर पर शरीर के दोषयुक्त अंग खराब टानसिक, कमजोर दांत, प्रवाहयुक्त श्वास नली से भी विष उत्पन्न होते हैं। शरीर पूर्ण स्वस्थ न हो तो शरीर के भीतर रहने वाले विभिन्न प्रकार के कीटाणु भी विष के परिमाण को बढ़ाते हैं।

यह समस्त विष या मल शरीर के लिए विजातीय ही होता है और हमारे स्वास्थ्य का आधार इसी पर है कि यह शीघ्र-से-शीघ्र मलद्वार, मूत्रनली, फेफड़े, चर्म आदि के द्वारा निकलता चला जाए। यदि ये मल निकालने के मार्ग साफ और खुले हुए रहते हैं और मल को आसानी से बाहर निकालते रहते हैं तो हमको कोई रोग होने की संभावना नहीं होती, पर यदि किसी कारणवश इनमें कुछ खराबी आ जाती है तो ये अपना कार्य ठीक ढंग से नहीं कर सकते। शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य की वृद्धि होने लगती है और जब वह एक नियत सीमा को

पार कर जाती है तो रोग प्रकट होने लगते हैं। इसी तथ्य को दृष्टिगोचर रखकर सुप्रसिद्ध चिकित्सा विज्ञान के ज्ञाता डॉ. सर विलियम आरबूथनट ने कहा है-चाहे रोगों का कितना ही विस्तार क्यों न किया जाए, पर वास्तव में रोग एक ही है अर्थात् शरीर की ठीक तरह से सफाई न हो सकना।

यह विजातीय द्रव्य शरीर में किस प्रकार जमा होकर वृद्धि को प्राप्त होता है और क्रमशः स्वास्थ्य को नष्ट करके मनुष्य को रोगी बना देता है, इसका विशद वर्णन जल-चिकित्सा के आचार्य डॉ. लुई कूने ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'एम आई वेल ऑर सिक ?' (मैं तंदुरुस्त हूँ या बीमार ?) में किया है। वे कहते हैं-

'शरीर में बहुत दिन तक अप्राकृतिक भोजन तथा अपने भोजन को निकालते रहने की ताकत नहीं रह जाती, तब शरीर में विजातीय द्रव्य जमा होने लगते हैं। आरम्भ में विजातीय द्रव्य पेड़ के पास मल-मूत्र त्याग के स्थानों के पास इकट्ठा होता है। फिर उसमें नित्य नया विजातीय द्रव्य मिलकर उसकी मात्रा

बढ़ती रहती है और शीघ्र ही अन्दर-ही-अन्दर उसमें एक परिवर्तन होने लगता है। उसके रेशे बिखरने लगते हैं और एक प्रकार का प्रकोप या सड़न पैदा हो जाती है। विजातीय द्रव्य धुलकर शरीर के ऊपर तथा नीचे के हिस्सों में फैलता है और धीरे-धीरे शरीर के भिन्न-भिन्न हिस्सों में जमा हो जाता है। यह द्रव्य ऊपर मस्तिष्क तक तथा नीचे पांव और हाथों की सीमा तक पहुंचे बिना नहीं रुकता। उस समय शरीर इसे हर कोशिश से बाहर निकालना चाहता है, पर

अधिक काल तक वह इस क्रिया में समर्थ नहीं होता। इस कोशिश में शरीर पर बहुत ज्यादा पसीना आता है, फोड़े-फुंसियां आदि अन्य क्रियाएं होती हैं। पांव का पसीना, जिसके संबंध में इतना अधिक मतभेद है, दरअसल शरीर की सफाई के लिए ही होता है। वास्तव में यह रोग का लक्षण है। इसे कृत्रिम उपायों से रोकने का फल केवल यह होगा कि शरीर में अव्यवस्था बढ़ेगी। शरीर को उत्तेजित करने वाली घटनाएं, जैसे आकस्मिक ठंड, बाहरी चोट, प्रबल मनोविकार इत्यादि का नतीजा प्रायः यह होता है कि अंगों के सिर पर जमा हुआ विजातीय द्रव्य को शरीर उसके उत्पत्ति स्थान की ओर वापस भेजने लगता है। यह सूजन का कारण होता है, जो उपर्युक्त कारणों से सदा जोड़ों के नीचे की ओर ही प्रकट होती है। हम गठिया के किसी भी रोगी में यह दशा देख सकते हैं।

'जिन अंगों में विजातीय द्रव्य जमा रहता है, वे अपना स्वाभाविक कार्य उचित रूप से पूरा नहीं कर सकते। वहां रक्त-प्रवाह में रुकावट होने लगती है और इससे शरीर का पूरा पोषण नहीं हो पाता। जहां विजातीय द्रव्य बहुत अधिक जमा हो जाता है, वहां अंग सूने पर ठंडे जान पड़ते हैं। उनमें गर्मी लाना बहुत मुश्किल हो जाता है। पहले पहल शरीर के अग्रभाग-हाथ-पैर ठंडे जान पड़ने



लगते हैं, पर जल्दी ही दूसरे अंगों के हिस्सों में भी इसका असर होने लगता है।'

अब इस प्रकार शरीर में मल या विजातीय द्रव्य की वृद्धि होती है तो उसका कुपरिणाम भी कुछ समय में प्रकट होने लगता है। जब खाया हुआ भोजन अपचने रूप में छोटी और बड़ी आंत में चल जाता है तो वह नियमित मल की तरह बाहर नहीं निकल पाता, वरन् प्रायः बीच में ही रुककर सड़ने लग जाता है, उसका कुछ अंश गैस रूप होकर ऊपर के अंग में चढ़ने लगता है। अगर उसके मार्ग में कोई भी बाधा न हो तो वह सहज ही में मस्तक तक पहुंच सकता है, पर बीच में जो शारीरिक अवयव हैं, वे उसको रोकने की चेष्टा करते हैं। इन क्षेत्रों के पारस्परिक संघर्ष के कारण सिर गर्म हो उठता है और अगर मल अधिक होता है तो उसकी गर्मी से बुखार भी हो जाता है। यह बुखार शारीरिक अवयवों द्वारा उसी विजातीय द्रव्य के बाहर निकालने की चेष्टा का परिणाम होता है। आरम्भ में जब यह मल कम होता है तो दस्त और पसीना के रूप में निकल जाता है, पर जितना मल निकलता है, उससे अधिक यदि हम अनुचित खान-पान द्वारा शरीर के भीतर डालते रहते हैं तो यह समस्त शरीर में बिखरकर जहां सुविधा होती है, वहां अपना स्थान बना लेता है। शारीरिक अस्वस्थता के अतिरिक्त ऐसे मलभारयुक्त लोगों की आकृति भी बिगड़ने लगती है। मुखाकृति खराब होकर मस्तक भी बेडौल हो जाता है। गर्दन जैसी होनी चाहिए, उसकी अपेक्षा छोटी या बहुत लम्बी दिखाई पड़ने लगती है। अनेक लोगों का मुंह फूला हुआ जान पड़ता है। ऐसे फूले शरीर को बहुत से लोग पुष्टता या शक्ति का चिह्न समझते हैं, परन्तु उनका यह विचार सर्वथा भ्रमपूर्ण होता है। यह लक्षण शक्ति की वृद्धि के न होकर मल भर जाने के होते हैं। छाती ऊंची-नीची हो जाती है, पेट आगे को लटकने लगता है, टांगें खंभे के समान दिखाई देने लगती हैं। कुछ लोगों के शरीर में मल अधिकांश में भीतरी भागों में ही रहता है, इसलिए उनके शरीर में ऐसे चिह्न तो नहीं दिखाई पड़ते, पर उनके शरीर में झुर्रियां पड़ जाती हैं और खाल लटक जाती हैं। गर्दन को इधर-उधर फेरने से खाल तनने लगती है। मुख का रंग फीका, पीला अथवा बहुत लाल हो जाता है। शरीर का रंग यदि बहुत चमकने लगे तो यह भी विजातीय द्रव्य इकट्ठा होने का लक्षण है।

मल के इकट्ठा होने की पहचान यह भी है कि उससे शरीर की स्फूर्ति जाती रहती है और उसका स्थान आलस्य ग्रहण कर लेता है। ऐसा व्यक्ति सदैव निकम्मा बनकर पड़ा रहना चाहता है और अपना कोई काम स्वयं करना पसंद नहीं करता। उसे सब प्रकार का परिश्रम, चलना-फिरना, खेलना-कूदना बहुत बुरा जान पड़ता है।

मनुष्य यद्यपि अपनी लापरवाही और चटोरापन के कारण शरीर को अनावश्यक खाद्य पदार्थों और फलस्वरूप मल से भरता रहता है, पर प्रकृति जहां तक संभव होता है, उसको किसी-न-किसी मार्ग से निकालकर शरीर को रोग से बचाने की चेष्टा करती ही रहती है। वह मलाशय से बचे हुए काम को पेशाब, पसीना और श्वास द्वारा पूरा कराने का प्रयत्न करती है। इस विधि से चर्म का

काम गुर्दे से और गुर्दे का काम चर्म से लेकर प्रकृति किसी प्रकार शारीरिक व्यवस्था को ठीक बनाए रखने की चेष्टा करती है पर यदि मनुष्य इतने पर भी नहीं चेतता और अपने प्रकृति-विरुद्ध तथा अनियमित रहन-सहन में सुधार नहीं करता, अति भोजन, तंबाकू, मद्य, नशा, असमय की निद्रा, बंद स्थान में सोना आदि कुदृष्टियों द्वारा मल को बढ़ाकर शारीरिक व्यवस्था विशृंखलित कर देता है तो शारीरिक अवयव शरीर को साफ रखने में असमर्थ हो जाते हैं और वह मल शरीर के भीतर ही जमा होकर हानिकारक विकार उत्पन्न करने लगता है। ऐसी अवस्था आ जाने पर प्रकृति भी अपना रूप बदल देती है और सहज उपायों को छोड़कर कठोर उपायों से काम लेने लगती है। इन मलों को भस्म करने के लिए ही वह अक्सर ताप (ज्वर) को उत्पन्न करती है, जिसकी गर्मी से मल घुलकर विभिन्न रास्तों से बाहर निकल जाए। जब कभी मल भिन्न प्रकार का होता है, तो प्रकृति पेचिश और आंव के दस्त पैदा कर देती है। यह मल श्वासनली द्वारा निकलने लायक हुआ, तो प्रकृति खांसी-जुकाम उत्पन्न करके मल को कफ के रूप में निकालने की कोशिश करती है। जब वह दोषों को चर्म द्वारा निकालने का प्रयत्न करती है तो उनका स्वरूप फोड़ा, फुंसी, खाज आदि का हो जाता है।

इसी सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए इंग्लैंड के प्रसिद्ध डॉक्टर टामस सिडेनहम ने अपने ग्रंथ में कहा है-‘प्रत्येक रोग रोगी के शरीर में स्वास्थ्य को वापस लाने की प्राकृतिक चेष्टा के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता।’ इसी प्रकार यूरोपीय चिकित्सा के आदिगुरु हिप्पोक्रेटस ने लिखा है-‘प्रत्येक रोग एक प्राकृतिक क्रिया है और उसमें जो रोग के लक्षण उत्पन्न होते हैं, वे शरीर की प्रतिक्रिया से ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए रोग की अवस्था में चिकित्सक का एकमात्र कर्तव्य यही है कि वह जैसे संभव हो, प्रकृति की सहायता करे।’

पर आजकल हम उलटी गति देख रहे हैं। प्रकृति को सहायता देकर रोग के मूलकारण विजातीय द्रव्य को बाहर निकाल देने के बजाय अधिकांश डॉक्टर तीव्र दवाओं के इंजेक्शन, गोलियां या कैप्सूल देकर उसे दबा देने की चेष्टा करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वह विषरूपी विजातीय द्रव्य शरीर के अंदर ही दबा पड़ा रह जाता है, वहीं धीरे-धीरे बढ़ता रहता है और कुछ समय पश्चात् जीर्णरोग के रूप में प्रकट होता है।

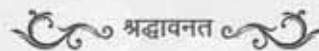
इस प्रकार हम स्वयं ही अपनी भूल से शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य को उत्पन्न करके निरन्तर उसकी वृद्धि करते रहते हैं और जब प्रकृति रोग के रूप में उसे बाहर निकाल देने की चेष्टा करती है, तब भी शांत रहकर उस प्रक्रिया को पूर्ण होने जाने देने के बजाय तरह-तरह की हानिकारक दवाओं से उसके कार्य में बाधा डालते हैं। इस प्रकार यदि कहा जाए कि हम स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारते हैं तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं। यदि हम इस विपत्ति से परित्राण पाना चाहते हैं तो प्राकृतिक उपायों से विजातीय द्रव्य को बाहर निकालकर शरीर को सदैव स्वच्छ और निर्मल रखने का प्रयत्न करना चाहिए। यही स्वास्थ्य प्राप्ति का सच्चा मार्ग है। □

*With Best Compliments from*

किसका है ? यह मत देखो। क्या है ? इस पर ध्यान दो।

अच्छा विचार व अच्छी कृति, फिर वह किसी की भी क्यों न हो, स्वीकार कर लो।

-आचार्य महाश्रमण



**पुष्कराज बड़ोला**

मुख्य न्यासी, जैन विश्व भारती

**जितेन्द्र मुकेश श्रेयांस बड़ोला**

ब्यावर - चेन्नई



# Great Experiences with yogasana

✿ Muni Kishanlal

## Scientific Examination of Asanas as well as Yogic Exercises

The description of the influence of different Asanas, Pranayam, Meditation, Bandh and Yogic exercises practised in India as well as abroad was published in Science study Yoga.

Electromyography (EMG) is the technique for evaluating and recording the electrical activity produced by skeletal muscles. With the help of EMG muscular activity, flexibility, muscular pressure and muscular changes during yoga have been studied.

Electrocardiography (ECG) is the technique for evaluating the electrical activity of the heart, measures the rate and regularity of heartbeats as well as the size of heart chambers etc. With the help of ECG the control generated over heart and blood pressure by yogic activity can be measured. Lungs breath control and lung capacity has been investigated during yogic activities. Gland and nerve centre related experiments have been successfully conducted during practice of yogic exercises. Practise of Ardha Sarvangasan, Pavanmuktasana and Shavasana for heart patients and high blood pressure patients at Saubhag Nature Cure Treatment and Research Centre-Ajmer have proved to be very much beneficial.

Dr. Laxmikant from Medical College, Madras has succeeded in getting back the strength and alertness in his heart patients and the patients of high blood pressure with Shavasana. The patients possessing stronger hearts were benefitted with Halasana and Sarvangasan. All the patients succeeded in sleeping better. Mr. Julian, the director of Third

Clinic of Poland, has studied instruments. The X-ray reports brought him to the conclusion that heart does not experience any type of pressure during the practise of Shirshasana.

Yogasanas are especially effective in the eradication of crime. Reports from jails, where yoga is being practiced, tell up that yogic exercises have proved to be supportive and beneficial in curing the root cause of physical, psychic, psychosomatic and other ailments among the inmates.

## Difference between Asanas and Physical exercise

33 pairs of nerves are connected from spine to the organs of the body and practice of every asana influences spine as well as the abdomen. As a result every organ receives the required quantity of vital energy. With practice of asanas muscles expand and contract enhancing flexibility. Blood circulation improves and the nervous system does not experience excessive pressure.

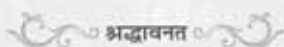
During physical exercise muscles experience pressure and blood vessels break down and reform in a way that makes them rigid. During exercise, breathing becomes faster, heart rate and blood pressure rise and this exerts extra pressure on lungs and heart. Exercises excite the sympathetic nervous system whereas practice of asanas controls the reflexive activities along with activating them. Hence brain experiences less pressure. This is why practice of asanas is more beneficial than practice of physical exercises.

## Importance of Yogasanas

According to Dr. Kuksak, we possess a treasure trove

With Best Compliments from

दूसरों को उपदेश देने से पूर्व जरा यह भी आत्मालोचन करें कि उपदेश का कितना अंश तुम्हारे जीवन में है ?



-आचार्य महाश्रमण

पूज्य पिताजी स्व. रणजीतसिंह जी बैद की पुण्य स्मृति में

**प्रकाश प्रमोद बैद**

लाडनू-कोलकाता

in our bodies called the endocrine glands. These glands are instrumental in the development of not only our mind and personality but also the life we live. Yogic exercises influence not only the gross physical body but also regulate and influence the mysterious doings and the innumerable invisible activities of the subtle subconscious mind. Practice of Asanas, Pranayam, Bandha, Shatkarma, Meditation, Kayotsarg and similar yogic activities influence the energy centres of body. There is no other exercise technique in the whole world that can challenge its effectiveness. A special mention needs to be made of the fact that no other activity can influence the endocrine system to the extent yogic activity can. There are thousands of centres present in human body, which directly influence the physical and mental health called the 'Reflex Spot Zones'. Energy is controlled and directed towards the life force (Divine Energy) through these centres. Apart from this function, these zones are connected to other body systems. Through practice of various asanas, these zones get activated and they relieve body systems of all toxicity. It is these zones which regulate the biological processes, nervous system as well as the electromagnetic energy in our body and support the maintenance of a healthy and strong body.

**Supplementing the lack of gravity through Asanas**  
During his journey into space, on April 2nd, 1984,



Indian astronaut Rakesh Sharma along with his Russian fello astronauts, practiced pranayam and asanas to keep themselves safe from the adverse effects of zero gravity in space such as reverse circulation of blood i.e. towards head, numbness, headache, dizziness, etc. Successful studies have been conducted which have proved the effectiveness of asanas and pranayam to counter the ill effects of zero gravity on the muscular system of astronauts. Human consciousness gets disturbed in zero gravity. The

human body is designed to function under gravity but in space all body systems have to function in the abnormal conditions of no gravity. The pressure on muscles decreases and speed of blood circulation become faster. As blood circulation is reversed, severe headache and lumbago (lower back pain) is experienced. It is only yogic activities that have been found to be the best among all the remedies put forth to fight these adverse situations. The account of the astronauts is proof that they have felt hale and hearty because of regular pranayam and other yogic activities. This is the reason that along with Russia many other countries have accorded pranayam and yogic activities their due

importance and included them in their space training programme.

#### **Successful results of Yogic Exercises on Health**

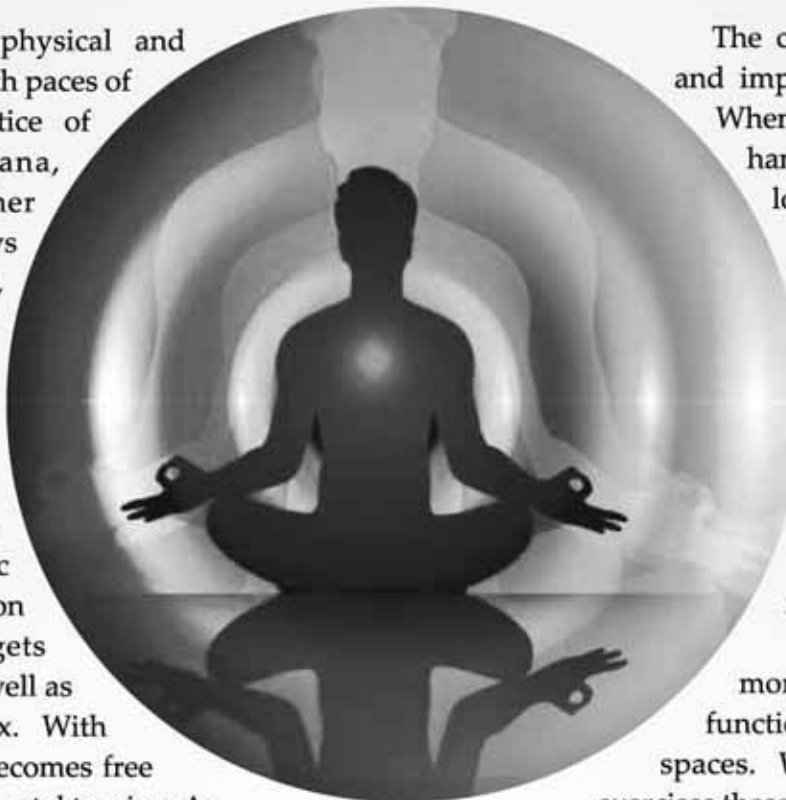
Yogic exercises activate and control the glands with

जब तक अज्ञानता की अनुभूति नहीं होगी,  
तब तक व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता॥  
- आचार्यश्री महाश्रमण

श्रद्धावन्त  
**भैरुलाल चौपड़ा**  
अहमदाबाद

which one achieves physical and mental health along with paces of mind. With the practice of Sarvangasan, Halasana, Shirshasana and other asanas the blood flows towards the thyroid, para thyroid, pituitary and pineal gland and their related organs get automatically massaged.

With an over active parasympathetic nervous system a person becomes dull and gets inflicted with fears as well as an inferiority complex. With practice of asanas he becomes free from all physical and mental tension. As the nervous system is controlled by the practice of asanas it contributes to the holistic development of a person.

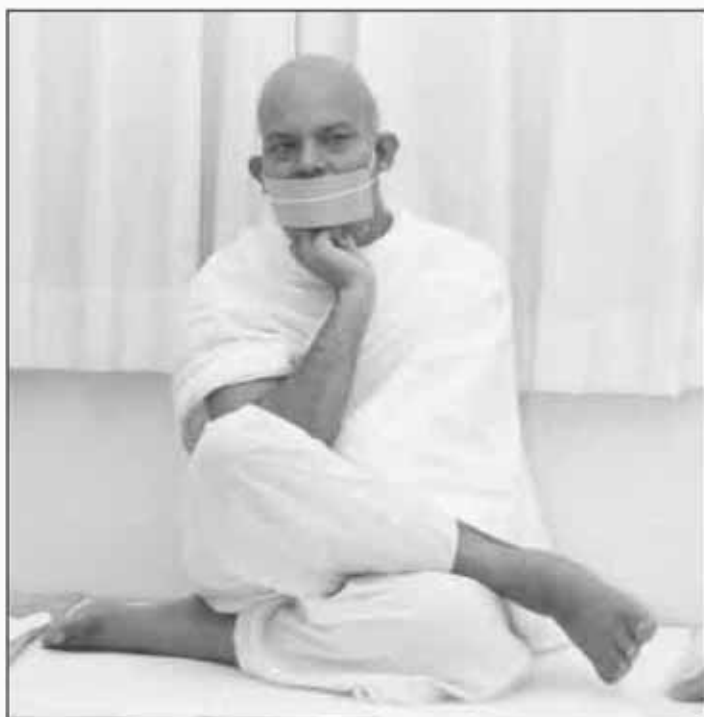


The conflict between wisdom and impulses is as old as time. When impulses have the upper hand a person rushes head long into acts detrimental to his well being. But when wisdom rules, a person knows the difference between right and wrong. Practice of asanas helps strengthen his spine and brain thus reducing impulsiveness in the person.

In the human body, more than 600 billion cells are functioning in their defined spaces. With practice of yogic exercises these cells remain healthy and generate a vitality that keeps body light and fit, brain active and mind peaceful resulting in a wonderful life.

□

## अहिंसक बनने का प्रयास करें : आचार्य महाश्रमण



ज्ञान का सार है आचार। ज्ञान प्राप्ति के बाद जो व्यक्ति हिंसा नहीं करना सीख गया मानों उसके जीवन में ज्ञान का सार आ गया। जो ज्ञान अर्जन के उपरान्त आचार व व्यवहार में आ जाए, वह सार्थक होता है। दुनिया में ज्ञान से बड़ी कोई पवित्र चीज नहीं होती है, परन्तु ज्ञान-ज्ञान में फर्क होता है। एक ज्ञान आदमी को भौतिकता की ओर ले जाने वाला, सुख-सुविधावादी बनाने वाला, चोरी, हिंसा, झूठ की ओर ले जाने वाला तो दूसरा ज्ञान आदमी को वैराग्य, ध्यान, साधना व मोक्ष के मार्ग पर ले जाने वाला होता है। वैराग्य की ओर ले जाने वाला आध्यात्मिक ज्ञान होता है।

आदमी को सभी प्राणियों के प्रति मंगल मैत्री की विचारधारा रखने का प्रयास करना चाहिए। आदमी की ऐसी विचारधारा आध्यात्मिक और कल्याणकारी हो सकती है। ज्ञानार्जन कर आदमी को अहिंसक बनने का प्रयास करना चाहिए। अहिंसा की चेतना को अध्यात्म के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। सभी जीव जीना चाहते हैं। इसलिए आदमी को किसी भी जीव की हिंसा करने से बचने का प्रयास करना चाहिए। आदमी को जो व्यवहार अपने लिए अच्छा नहीं लगता, वैसा व्यवहार उसे दूसरों के साथ नहीं करना चाहिए। आदमी संयम, अहिंसा व मैत्रीपूर्ण जीवन जीने का प्रयास करना चाहिए।

□



# Sharir Preksha

Mukhya Niyojika Sadhvi Vishrut Vibha

In Preksha Meditation, great emphasis is laid on the physical body because it houses the soul and is thus the gateway to the invisible soul. However, in order to know and understand the soul, one must first get oneself acquainted with the subtleties of the physical body.

Perception of the body involves observation of the body from the crust to the core i.e. moving from the gross body to the subtle body, and finally to the consciousness. During the perception of the body, vibrations are felt all over the skin, followed by perception and awareness of:

- Superficial sensations on the skin such as contact with clothes, warmth, itching, etc.
- Sensations of muscular movements
- Deeper sensations of internal organs
- Subtle vibrations of bio-electrical impulses in the nervous system

## Objective

The main goals of the perception of the body are:

- To comprehend the realities of the physical body
- To detach from the material world
- To perceive the subtleties of the inner world

For perception of the subtleties of physical body, one needs to withdraw from the external world and allow the mind to incline towards the internal vibrations. In order to be able to do so, the practitioner begins the perception process from the toe and moves all the way to the top of the head, while intensely focusing on every part of the body, and observing the sensations and vibrations happening in the body.

## Technique

The practice of the perception of body consists in concentrating the mind on each part of the body,

one by one and perceiving the sensations and vibrations taking place in each part. Here the perception does not mean the visual perception, but the mental one. The sensations may be superficial sensation of the skin such as the contact with your clothes, warmth or coolness etc., or they may be the sensations of pain, numbness etc. Felt in the muscles or any other type of vibrations. Starting from the surface one has to penetrate deeply inside and try to become aware of the internal and subtle vibrations. While practising it one should try to keep one's mind free from like or dislike.

## Benefits

Perception of the body helps in achieving the following physical, psychological and spiritual benefits:

### (a) Physical

- Strengthening of the immune system
- Improvement in the digestion efficiency
- Regulation of the blood circulation
- Balance between the sympathetic and parasympathetic nervous systems

### (b) Psychological

- Improvement in the mental concentration and alertness
- Allows to visualize and focus on the internal phenomena of the body

### (c) Spiritual

- Realization of the soul

## Conclusion

Sharir Preksha helps us to obtain greater insight into the nature of our inner self. It can act as a complementary therapy, when followed along with the main course of medication. This helps to boost our physical and mental health and play a vital role in alleviating several psychosomatic diseases.





## संचालित प्रेक्षावाहिनियों के संवाहकों की सूची

क्रम सं.	नाम/स्थान	सम्पर्क सूत्र	क्रम सं.	नाम/स्थान	सम्पर्क सूत्र
01	राज गुनेचा, दिल्ली (कृष्णानगर)	09268729037	43	अशोक जैन, सवाईमाधोपुर	09413380835
02	कविता सुराणा, दिल्ली (शाहदरा)	09818939020	44	सज्जनराज बाठिया, पाली	09414121314
03	सरिता चोपड़ा, दिल्ली (शालीमार बाग)	09868716701	45	निवेदिता नोलखा, टालीगंज	09836371000
04	हनुमान बरड़िया, दिल्ली (लक्ष्मीनगर)	09310147197	46	पुष्पा बैद, बेहाना	09831366760
05	मनीषा जैन, दिल्ली (उत्तम नगर)	09899592787	47	मंजू सिपानी, भवानीपुर	09804334560
06	श्वेता सेठिया, दिल्ली (लाजपतनगर)	09711970124	48	सुधा जैन लेक टाउन	09830216254
07	रेणु बोथरा, दिल्ली (शास्त्रीनगर)	09968075932	49	मंजू सिपानी, अलीपुर	09804334560
08	अमराव दूगड़, दिल्ली (कृष्णानगर)	09310003313	50	बबिता तातेड़, काकुरगाछी	09831740337
09	मंजू बैद, दिल्ली (मॉडल टाऊन)	09680013936	51	प्रेम धारेवा, विशाखापट्टनम	09866102694
10	विमला दूगड़, कांदीवली, मुम्बई	09004937723	52	गौतमचंद सालेचा, जसोल (पे बाकी)	09414108229
11	सूरज धोका, चेन्नई (साउकारपेट)	09381001574	53	डा. विजयश्री शर्मा, लाडनू	08233344482
12	ललित दुगड़, सूरत	09327386335	54	नरेन्द्र दुगड़, अमरायवाड़ी ओढव	07922893069
13	प्रवीण पुगलिया, कटक	09861366553	55	रायचंद लूणिया, कांकरिया	09327004278
14	सुरेन्द्र ओसवाल, रायपुर	09425285121	56	कमल भंसाली, खुशकीबाग	09431230892
15	रीना सेठी, जयपुर	09785026111	57	जंवरीलाल सालेचा, बालोतरा	09414106209
16	सरिता कांकरिया, जोधपुर	09829024782	58	राजकुमारी बरड़िया, कोलकाता	09038005252
17	सुरेश जैन, टिटिलागढ़	09437036494	59	अंकिता नन्दकिशोर जैन, केसिंगा	09938820528
18	विकास सुराणा, इचलकरंजी	09326021312	60	चंदा बोरड़, हैदराबाद	09849807591
19	पुष्पा गन्ना, बैंगलोर	09686366250	61	सोनूकुमार जैन, सिन्धकेला	09776582348
20	सुनील छाजेड़, नागपुर	09881556411	62	अनिल बैगाणी, बरपेटा रोड़, असम	09435124834
21	निशा कुण्डलिया, विशाखापट्टनम	09491765646	63	सरिता जैन, तुसरा	09438449559
22	सुरेन्द्र/भारती, नोएडा	09899942507	64	बिमल कुमार जैन, उत्केला	09937074670
23	अनुराग बैद, नोखा	09414417112	65	ममता जैन, कांटाभजी	09439870908
24	महेन्द्र मेहता, जोधपुर भाहर	09413058604	66	चंदन जैन, भवानीपटना	09937692805
25	धरमचंद बाफना अलीपुरद्वार	09434184608	67	नीलम बोथरा, फारबिसगंज	09471955551
26	जितेन्द्र पुगलिया, कोयम्बटूर	09843015393	68	राकश सिंधी, बैलूर	09830031321
27	शशि गांधी, न्यू अलीपुर	09830433456	69	मनोज जैन, बोलांगीर	09437037788
28	मनोज संकलेचा, पुणे	09822274374	70	प्रवीण बैद, बंगाईगांव	09435021191
29	देवीलाल कोठारी, केलवा	09413058604	71	सुमितकुमार जैन, बेंगामुंडा	09658961337
30	सुबोध दूगड़, उदयपुर	09414263586	72	डा. माया शाह संग्रामपुरा, सूरत	09374533287
31	नौरतन पारख, सिलीगुड़ी	09233423523	73	आनंद सेठिया, नागपुर	09373471831
32	प्रवीण मेड़तवाल, उधना	09428398210	74	श्रीमती अंजू जैन, हावड़ा, कोलकाता	09681230341
33	जेठमल चौधरी, भीलवाड़ा	09214966459	75	कन्हैयालाल बोथरा, गंगाशहर	09414142617
34	जयचंद दूगड़, कूचबिहार	08670272834	76	उषा धाड़ेवा, बांगुर	09433092831
35	टीकमचंद बैद, दीनहट्टा	09547344571	77	मंजू सिपानी, बालीगंज	09804334560
36	धर्मचंद बोथरा इरोड़	09362258194	78	मंजू सिपानी, शिवतल्ला	09804334560
37	संदीप मादरेचा, डोमबिवली	09820368498	79	राजेश बैद, न्यूसीजी रोड़, अहमदाबाद	09016721435
38	भारती डांगड़ा, कुर्ला	09869514103	80	विमला दूगड़, कांदीवली, मुम्बई	09004937723
39	सुनीता कोठारी, रतलाम	08989465876	81	श्रीमती सुमन चोपड़ा, लूणकरनसर	09413400818
40	ममता बाठिया, सूर्यनगर, दिल्ली	08010081967	82	यशपाल गुप्ता, भोरपुर, पंजाब	09780728910
41	भरत कुमार जैन, भीम	09414786474	83	सुश्री प्रज्ञा जैन, नीमच	09425187845
42	अनंत कुमार जैन, गांधीधाम	09426217140	84	सविता रुणवाल, कोल्हापुर	09850222241

## संचालित प्रेक्षावाहिनियों के संवाहकों की सूची

क्रम सं.	नाम/स्थान	सम्पर्क सूत्र	क्रम सं.	नाम/स्थान	सम्पर्क सूत्र
85	विद्याधर बोरड	09982858336	97	गौतम गादिया,सूरत	09377555545
86	मंजू सिपानी, शिवतल्ला	09804334560	98	राजेश डागा, जोधपुर	09413371045
87	सीमा गिड़िया, कोलकाता	09433955595	99	महावीर संचेती, उधना 2	09825788460
88	श्री रवि छाजेड़, नार्थ हावड़ा	09433022720	100	वंदना नाहर, बेंगलोर	07406150330
89	मोहनलाल बोथरा, बालीगंज	09331019457	101	महावीर संचेती, सूरत	09825788460
90	श्री बंसत मालू, अहमदाबाद	09327002736	102	रमेश नौलखा	0981023674
91	श्री मदन कोठारी, सूरत	09374532225	104	सीमा कावड़िया, राजसमंद	09413664780
92	श्रीमती मुन्नी देवी डागा चूरू	09413879404	105	चन्द्रप्रकाश पोरवाल, उदयपुर	09414737357
93	ओमप्रकाश जैन पीलीबंगा	09460646804	106	संगीता पोरवाल, उदयपुर	09468578797
94	सीमा जैन, जगराओ	09988943738	107	उषा धारेवा, कोलकाता	09433092831
95	सुशीला पुगलिया,सरदारशहर	09982116227	108	राजेन्द्र बरड़िया, सूरत	09227920166
96	दीपिका बोथरा, बीकानेर	09351321988			

## संभावित प्रेक्षावाहिनी संवाहकों की सूची

क्रम सं.	नाम/स्थान	सम्पर्क सूत्र	क्रम सं.	नाम/स्थान	सम्पर्क सूत्र
1	राजेश बैगाणी, अररिया कोर्ट	9431259851	19	विनोद राठौड़, मुम्बई	9923767437
2	वीरेन्द्र संचेती, कटिहार	9431260358	20	विकास जैन, मुम्बई	9819760767
3	कमलेश धाकड़, नाथद्वारा	9461805833	21	आनंद लूणिया, कोलकाता	9330997778
4	राकेश संचेती, मोमासर	9694588430	22	प्रेमलता चौरड़िया, कोलकाता	9433061999
5	दिलीप दूगड़, गौहाटी	9435404819	23	उगमराज बैद, तेजपुर	9435081434
6	दीपशिखा बैद, हाजरा कक्षा	9007974585	24	अभयराज बैगानी, बीदासर	9954213279
7	सुशील बोरड, विजयनगरम	9440985577	25	दीपक टांटिया, चेन्नई	9176374822
8	महेश मेहता, कच्छ	9879360855	26	संगीता नाहटा, सूरत (वीआईपी)	9376630760
9	दिनेश नौलखा, मरोल, मुम्बई	9892765261	27	अनिल रांका, सूरतगढ़	9414092230
10	मंजू लूणिया, बैंगलूर	9343411603	28	वंदना नाहर, बेंगलोर	7406150330
11	प्रतिभा बोथरा, कोलकाता	9331297796	29	पूनम गादिया, चिकमंगलूर	9481156545
12	अनिल सांखला, जलगांव	9422566311	30	प्रकाश सुराणा, सैथिया	9007222404
13	अभिषेक बोथरा, फालाकाटा	9434137753	31	बंशीलाल बोथरा, वीरगंज	977-9855022040
14	नंदकुमार जैन, हिसार	9215902677	प्रभारी प्रेक्षा वाहिनियां		
15	सुमन नाहटा, कोलकाता	9007078440	1	अलका सांखला, सूरत	0942791613
16	प्रियदर्शिनी जैन, हैदराबाद	8374704700	2	डॉ. धारिणी जैन, ओडिशा	09916317230
17	प्रियदर्शिनी जैन, हैदराबाद	8374704700	3	बिमल गुनेचा, दिल्ली	09716479904
18	राजेश भादानी, श्री झूगरगढ़	9887701998	4	आनन्द सेठिया	09373471831

भावना, क्रिया और परिणाम की एक शृंखला है। कार्य का परिणाम प्रायः भावना पर आधारित होता है।

शुद्ध भावना से की गई क्रिया शुभ परिणाम लाती है। - आचार्य महाश्रमण

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

**सरला देवी – महेन्द्र कुमार जैन**

महनसर ( राजस्थान ) - किशनगंज ( बिहार )

बेंगलोर ( कर्नाटक )



# विधिमार्गप्रपा में निर्दिष्ट मुद्राओं का सोद्देश्य स्वरूप एवं उसके विभिन्न प्रभाव-2

❁ डॉ. साध्वी सौम्यगुणाश्री (खरतरगच्छ)

हृदय, मस्तक, शरीर आदि की शुद्धि एवं सुरक्षा हेतु प्रयुक्त मुद्राएं  
हृदय मुद्रा

मानव की शारीरिक संरचना में हृदय चक्र का प्रमुखतम स्थान है। हमारा शरीर विभिन्न प्रकार के तंत्रों द्वारा संचालित होता है, उनमें हृदय तंत्र एक पम्प के समान कार्य करता है। सम्पूर्ण शरीर में रक्त परिसंचरण सम्बन्धी क्रियाएं हृदय के द्वारा संचालित होती हैं। जब तक हृदय क्रियाशील रहता है शरीर के समग्र अवयव सुचारु रूप से कार्य करते हैं। हृदय की घड़कन देखकर ही व्यक्ति के जीवित और मृत होने का निर्णय किया जाता है। हमारे मनोभावों का हृदय पर तुरन्त असर होता है। यदि हम क्रोध से आविष्ट हैं तो हृदय वेग बढ़ जाता है और जब समत्व की गंगा में नहा रहे होते हैं तो हृदय गति धीमी हो जाती है। इस तरह हृदय तंत्र और वैचारिक जगत का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह मुद्रा हृदय शुद्धि एवं दुष्ट प्रभावों से संरक्षण करने हेतु की जाती है।

विधि

‘बद्धमुष्टयोः करयोः संलग्नसंमुखांगुष्ठयोर्हृदयमुद्रा।’

अर्थात् परस्पर मिले हुए दोनों हाथों की मुट्ठियों के अंगूठों को स्वयं के सम्मुख रखने पर हृदय मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

शारीरिक स्तर पर हृदय शरीर का सर्वाधिक शक्तिशाली अवयव है। यह मुद्रा हृदय गति को नियंत्रित कर मन की चंचलता को शान्त करती है। जठराग्नि को प्रदीप्त करता है एवं पाचन क्रिया को सक्रिय बनाता है। इस मुद्रा में पंच तत्वों का पारस्परिक संयोग होने से देह स्थित सभी तत्व नियंत्रित रहते हैं तथा शारीरिक स्वस्थता का अनुभव होता है।

- मानसिक दृष्टि से चित्त शान्त, स्थिर एवं एकाग्र बनता है।

हृदय मुद्रा को धारण करने से अनाहत चक्र एवं ब्रह्म केन्द्र सक्रिय होते हैं। इससे निर्ममता, उग्रता, अनुत्साह, निराशा, पागलपन आदि का निवारण होता है। धूम्रपान नियंत्रण में यह मुद्रा विशेष रूप से सहायक हो सकती है।

पुरानी बीमारी, ऊर्जा की कमी, पार्किन्संस, हृदय एवं श्वसन सम्बन्धी समस्याएं, सुस्ती, दमा, मस्तिष्क सम्बन्धी रोग, कैंसर आदि शारीरिक समस्याओं में भी यह मुद्रा विशेष लाभ पहुंचाती है।

वायु एवं आकाश तत्व का संतुलन करते हुए यह हृदय, फेफड़े, रक्त संचार प्रणाली, श्वसन तंत्र आदि का नियमन करती है तथा आनंद की अनुभूति करवाती है। थायमस, थायरोइड एवं पैराथायरोइड ग्रन्थियों के स्त्राव को नियंत्रित करते हुए यह मुद्रा हड्डियों के विकास, घाव भरने, रक्त प्रवाह, कोलेस्ट्रॉल, कामवासना आदि का नियंत्रण करती है। यह मुद्रा आवाज नियंत्रण, स्वभाव नियंत्रण, मोटापा, वजन, दुर्बलता, ऑर्थराइटिस आदि में भी लाभकारी है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा विषय कषायों का शमन कर क्षमा आदि गुणों का उत्सर्जन करती है।

विशेष

- इस मुद्रा को बनाते समय हथेलियों एवं अंगुलियों का आकार हृदय की भांति प्रतीत होता है तथा दोनों हाथों को हृदय के सम्मुख रखा जाता है इसलिए इस मुद्रा को हृदय मुद्रा कहते हैं।

- हमारे शरीर में हृदय ही एक ऐसा तंत्र है जो दूषित रक्त को शुद्ध रक्त के रूप में परिवर्तित करता है।

- हृदय ग्रहण शक्ति का स्रोत है। पूर्व जन्मों अथवा इस जन्म के संस्कारों के अनुरूप अच्छी-बुरी आदतों को ग्रहण करने का कार्य हृदय ही करता है।

- एक्यूप्रेशर रिफ्लेक्सोलोजी के अनुसार यह मुद्रा हृदय, लीवर, पेन्क्रियाज, एड्रीनल, फेफड़े सम्बन्धी रोगों में लाभदायी है।

शिरों मुद्रा

सिर मस्तक को कहते हैं। मस्तिष्क मानव शरीर का सर्वोत्तम अंग है। यौगिक पुरुषों ने मस्तिष्क के अग्रभाग को शान्ति केन्द्र कहा है। यह चित्तशक्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इसका सम्बन्ध भावधारा से है। सूक्ष्म शरीर से प्रवहमान भावधारा मस्तिष्क के इसी भाग में आकर मन के साथ जुड़ती है। यहीं हमारे भाव मनोभाव बनते हैं। इस प्रकार यह सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर का संगम बिन्दु है।

आयुर्वेद के आचार्यों ने इसे ‘अधिपति मम स्थान’ माना है। आधुनिक आयुर्विज्ञान में इसे अवचेतन मस्तिष्क (हायपोथेलेमस) कहा गया है। नाड़ी संस्थान और अन्तःस्त्रावी ग्रन्थि संस्थान का संगम भी यहीं होता है।

हठयोग के अनुसार यह ब्रह्मरन्ध्र या सहस्त्रार चक्र का स्थान है। प्राचीन



साहित्य में 'हृदय' का भाव संस्थान के रूप में जो उल्लेख किया गया है वह शान्ति केन्द्र या अवचेतन मस्तिष्क ही है। यही भावधारा के उद्गम का मूल स्रोत है।

शिरोमुद्रा मस्तिष्क की सुरक्षा एवं हृदय परिवर्तन के प्रयोजन से की जाती है।

**विधि**

‘तावेव मुष्टी समीकृतौ ऊर्ध्वागुष्ठौ शिरसि विन्यसेदिति शिरोमुद्रा।’

हृदय मुद्रा के समान ही दोनों हाथों को मुट्ठियों के रूप में संयोजित कर ऊर्ध्वाकार अंगुष्ठों को मस्तक से स्पर्श करवाना शिरो मुद्रा है।

**सुपरिणाम**

- शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा की मदद से दाहिनी ओर के मस्तिष्क की क्रियाएं संतुलित रहती है। शिरो मुद्रा में पंच तत्वों को नियंत्रित करने वाली पांचों अंगुलियां परस्पर में मिलती है जिससे तत्वों का संतुलन बना रहता है। इस मुद्रा से अग्नि तत्व और आकाश तत्व अधिक प्रभावित होते हैं। फलस्वरूप हृदय तंत्र सुदृढ़ एवं सक्रिय बनता है और उदर विकार दूर होते हैं।

- मानसिक स्तर पर विचारों की भाग दौड़ कम होती है। सोचने एवं समझने के तरीके में बदलाव आता है। इस मुद्रा के द्वारा बुद्धि, स्मृति, चैतन्य शक्ति आदि को प्रबल किया जा सकता है।

- आध्यात्मिक स्तर पर यह मुद्रा आज्ञाचक्र की जागृति में सहायक होती है जिससे साधक धारणा से ध्यान की ओर अग्रसर होता है। इस मुद्राभ्यास से धारणें इष्ट ग्रन्थि सक्रिय होकर कण्ठ विकारों को दूर करती है। व्यक्ति वाक्सिद्धि प्राप्त कर सकता है। यह मुद्रा इडा एवं पिंगला के प्रवाह को संतुलित करती हुई सुषुम्ना को जागृत करने में सहयोग करती है। इस मुद्रा का सम्यक् प्रयोग करने वाला साधक शास्त्र का ज्ञाता एवं समदर्शी होकर अपूर्व सिद्धियां प्राप्त कर लेता है।

**विशेष**

- इस मुद्रा को बनाते समय द्वयांगुष्ठो को मस्तक से संस्पर्शित करवाया जाता है अतः इसे शिरोमुद्रा कहते हैं।

- शिरोमुद्रा के द्वारा मस्तक का कवच किया जाता है जिसके प्रभाव से किसी तरह की दुष्टशक्ति इस अंग को क्षति नहीं पहुंचा सकती।

- एक्जूप्रेशर मेरिडियनोलोजी के अनुसार इससे सिरदर्द, माइग्रेन, चक्कर आना आदि मस्तिष्कीय रोगों का उपचार होता है।

**शिखा मुद्रा**

शिखा चोटी को कहते हैं। भारतीय परम्परा में शिखा का अत्यधिक महत्व है। योग विज्ञान में शिखा स्थान को ज्ञानकेन्द्र कहा गया है। यह चैतन्य शरीर का सबसे बड़ा केन्द्र है मनोजगत् की समस्त वृत्तियां ज्ञान केन्द्र के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। सूक्ष्म शरीर से उतरने वाली शक्ति या उतरने वाला चैतन्य मस्तिष्क के माध्यम से स्थूल शरीर या जागृत मन में उतरता है। हमारी बुद्धि, स्मृति, चिन्तनशक्ति आदि इसी केन्द्र में है। इन्द्रियों के सारे संवेदन भी यहीं अनुभूत

होते हैं। इन्द्रिय संवेदनाओं के सारे केन्द्र मस्तिष्क में है, जैसे आंख देखती है पर उसे संवेदन का केन्द्र आंख के पास नहीं है, वह मस्तिष्क में है। जीभ स्वाद लेती है किन्तु उसका संवेदन केन्द्र मस्तिष्क में है अतः जीभ, कान, आंख पर नियंत्रण की आवश्यकता नहीं है। शरीर का संचालन मस्तिष्क द्वारा होता है इसलिए मस्तिष्क को संतुलित रखना चाहिए।

केन्द्रीय नाड़ी संस्थान का भी यह प्रमुख स्थान है। लघु मस्तिष्क, बृहद् मस्तिष्क एवं पञ्च मस्तिष्क के विभिन्न हिस्से ज्ञानकेन्द्र से सम्बद्ध हैं।

शिखा मुद्रा तत्स्थानीय अंगों का संरक्षण एवं मानसिक ज्ञान (केवलज्ञान) की प्राप्ति हेतु की जाती है।

**विधि**

‘पूर्ववन्मुष्टीबद्धा तर्जन्यौ प्रसारयेदिति शिखा मुद्रा।’

हृदय मुद्रा के समान ही दोनों हाथों की बंधी हुई मुट्ठी में से तर्जनी अंगुलियों को प्रसारित करना शिखा मुद्रा है।

**सुपरिणाम**

- शारीरिक दृष्टि से इस मुद्रा के प्रयोग से मस्तिष्क का मूलभाग (शिखा भाग) प्रभावित होता है। इससे सूक्ष्म ज्ञान की प्राप्ति होती है।

योगी पुरुषों के अनुसार इस मुद्रा के द्वारा लघु मस्तक सक्रिय होकर विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति में सहयोग करता है।

इस मुद्रा में अग्नि तत्व (अंगूठों) का पारस्परिक संयोग उस तत्व को संतुलित करता है।

इस मुद्रा के प्रयोग से आकाश तत्व की कमी हो तो आपूर्ति हो जाती है।

- मानसिक जगत की अपेक्षा यह मुद्रा श्वास को नियंत्रित कर मन की चंचलता को कम करती है।

- भावनात्मक स्तर पर इस मुद्रा का प्रयोग साधक को आध्यात्मिक स्थिरता प्राप्त करवाता है। मणिपुर चक्र प्रभावित होने से व्यक्ति अहिंसा, सत्य, अचौर्य, क्षमा आदि गुणों का अनुसरण करता हुआ उत्तरोत्तर प्रगति करता है।

**विशेष**

- इस मुद्रा के माध्यम से शिखा स्थान का स्वरूप दिखाया जाता है अतः इसे शिखा मुद्रा कहा गया है।

- हिन्दू मान्यतानुसार शिखा केन्द्र पर छोटे-छोटे छिद्र होते हैं। उसमें से निरन्तर निर्धूम ज्योति प्रवाहित होती रहती है। सूक्ष्म अभ्यासी इस रहस्य का अनुभव कर सकते हैं।

- आयुर्वेद शास्त्रों के अनुसार यह मुद्रा मस्तिष्क एवं छाती सम्बन्धी अवयवों पर नियंत्रण करती है।

- योग आचार्यों के अनुसार इससे यह

मस्तिष्क भाग को संतुलित रखती है।

एक्जूप्रेशर यौगिक चक्र के अनुसार आज्ञा चक्र प्रभावित होता है तथा लीवर एवं मुख सम्बन्धी कुछ भाग विकृत होने से बचते हैं। यह मुद्रा पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र और रक्तसंचरण को भी संतुलित करती है।



# जैन परम्परा में ध्यान

❀ धर्माचन्द चौपड़ा

परिभाषा

चिन्तन की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं, जैसे भ्रमर फूलों के रसपान में लीन रहता है वैसे ही लीनतापूर्वक मन का एक ही ध्येय-बिन्दु पर लगा रहना ध्यान कहलाता है। विषयान्तर होने पर ध्यान का क्रम टूट जाता है।

महत्व

व्यावहारिक भाषा में हम कहते हैं कि अमुख कार्य ध्यान से करना, ध्यान नहीं रखा तो कार्य बिगड़ जायेगा। साधारण-सी बात लीजिये-द्रव्य पदार्थ को एक पात्र से दूसरे पात्र में डालते समय पूरी एकाग्रता नहीं रखते हैं तो द्रव पदार्थ पात्र से बाहर चला जाता है। शीशी में इत्र भरना होता है तो भरते समय कितना ध्यान रखा जाता है। ध्यान नहीं रखा तो मूल्यवान इत्र शीशी से बाहर गिर जाता है। अध्यापक के पढ़ाते समय विद्यार्थी अपना ध्यान अध्यापक के वचनों की ओर नहीं रखता है तो वह ज्ञानार्जन नहीं कर सकता है। जिस प्रकार लौकिक कार्य में ध्यान की एकाग्रता आवश्यक है, उसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में भी ध्यान की एकाग्रता आवश्यक है। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है-

ध्यानं तु विषये तस्मिन्नेकप्रत्यय संततिः।

अर्थात् अपने विषय में मन का एकाग्र हो जाना ध्यान है।

लगातार एक ही विषय पर 48 मिनट से कुछ कम समय (अन्तर्मुहूर्त) तक ध्यान एकाग्र रह सकता है। फिर विषयान्तर हो जाता है।

आचार्य उमास्वति ने कहा है-

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानम्। आ मुहूर्तति।

- तत्त्वार्थसूत्र 9।27-28

अर्थात् उत्तम संहनन वाले का एक विषय में अन्तःकरण की वृत्ति का स्थापना-ध्यान है। वह अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त रहता है।

आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है-

मुहूर्तान्तर्मनःस्थैर्यं ध्यानं छद्मस्थयोगिनाम्। - योगशास्त्र 4।115

अर्थात् छद्मस्त साधक का मन अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त तक स्थिर रहता है।

किन्तु मन को एकाग्र करना अत्यन्त कठिन है। इसके लिए निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

बन्धाय विषयाऽऽसंगि मोक्षे निर्विषयं स्मृतम्॥ - मैत्रुपनिषद्

अर्थात् मन का संयम मोक्ष का और असंयम कर्मबन्ध का कारण है। विषयासक्त मन बन्धन का कारण और जो विषयों से बंधा नहीं है, वह मोक्ष का कारण है।

मन की शुभाशुभ परिणति के द्वारा आत्मा किस प्रकार उत्थान और पतन

की ओर अग्रसर होती है, तत्सम्बन्धी प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का उदाहरण बड़ा ही मार्मिक है, जिन्होंने मन की अशुभ परिणति के द्वारा नरक के योग्य दलिक इकट्ठे कर लिए और कुछ ही समय पश्चात् मन की शुभ परिणति के प्रभाव से केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

एक गुजराती कवि ने कहा है-

अजब छे वेग आ मननो, गजब छे शक्ति पण भारी।

घणा ज्ञानी अने ध्यानी, गया मन शत्रुथी हारी॥

महान् सन्त आनन्दघनजी ने भगवान् कुन्धुनाथजी की स्तुति करते हुए लिखा है- हे भगवन्! यह मन नपुंसकलिंग है, निर्बल है, बुजदिल है, परन्तु आज चिन्तन करता हूँ तो लगता है कि यह मन सारे संसार की शक्तियों को पीछे धकेल देता है। सब कार्य करना सरल है, परन्तु मनोनिग्रह करना कठिन है।

मनोनिग्रह के लिए गौतमस्वामी ने केशीस्वामी को बताया-

मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिघावई।

तं सम्मं तु निगिणिहामि, धम्मसिक्खाए कंयंगं॥

- उत्तराध्ययनसूत्र अ. 23, गा, 51

अर्थात् मनरूपी साहसिक और भयानक दुष्ट घोड़ा चारों ओर भागता रहता है। जिस प्रकार जातिमान् घोड़ा शिक्षा द्वारा सुधर जाता है, उसी प्रकार मन रूपी घोड़े को सम्यक् प्रकार से धर्म की शिक्षा द्वारा मैं वश में रखता हूँ।

महमूद गजनवी को विजयोल्लास में हाथी पर बिठाया जाता है। जब गजनवी महावत से अंकुश मांगता है तो महावत कहता है-अंकुश तो महावत के हाथ ही रहता है। गजनवी तुरन्त हाथी से नीचे उतर जाता है और कहता है-जिसका अंकुश मेरे हाथ में नहीं है, उस पर मैं सवार नहीं होता। अभिप्राय यह कि मनरूपी घोड़े की लगाम हाथ में होनी चाहिए। मन चपल घोड़े के समान है, जिसे धर्म-शिक्षा रूपी लगाम से ही वश में किया जा सकता है।

चंचल मन को वश में करने के लिए गीता में दो उपाय बताये हैं-

अभ्यासेन तु कौन्तेय! वैराग्येण च गृह्यते।

अर्थात् यह मन दो प्रकार से वश में किया जा सकता है-अभ्यास के द्वारा और वैराग्य के द्वारा। अभ्यास का अर्थ है एकाग्रता की पुनःपुनः साधना और वैराग्य का अर्थ है विषयों के प्रति विरक्ति। एकाग्रता के अभ्यास और विषयविरक्ति के द्वारा मन को काबू में किया जा सकता है।

मन की अवस्थाओं को जाने बिना और उसे उच्चस्थिति में स्थित किये बिना योग-साधना संभव नहीं है।

हेमचन्द्राचार्य ने स्वानुभव को योगशास्त्र के बारहवें प्रकाश में उद्धाटित करते हुए सर्वप्रथम अवस्थाओं के आधार पर मन के भेदों का निरूपण किया है-

इह विक्षिप्तं यातायातं श्लिष्टं तथा सुलीनं च।

चेतश्चतुः प्रकारं तज्ज्ञचमत्कारकारि भवेत्॥-योगशास्त्र 12।12

मनुष्य में जितनी क्षमता होती है, उसका उतना उपयोग नहीं होता।

इसका एक कारण है संकल्प का अभाव।

- आचार्यश्री महाश्रमण



नवीन बैंगाणी

कोलकाता



योगाभ्यास के प्रसंग में मन चार प्रकार का है—(1) विक्षिप्त मन, (2) यातायात मन, (3) श्लिष्ट मन, (4) सुलीन मन। चित्त के व्यापारों की ओर ध्यान देने वालों के लिए यह भेद चमत्कारजनक होते हैं।

विक्षिप्त मन चंचल है जो भटकता रहता है। यातायात मन कुछ आनन्दवाला है, वह कभी बाहर चला जाता है कभी अन्दर स्थिर हो जाता है। प्राथमिक अभ्यास में ये दोनों स्थितियाँ होती हैं। श्लिष्ट मन स्थिर होने के कारण आनन्दमय होता है और सुलीन मन अत्यन्त स्थिर होने के कारण परमानन्दमय होता है।

जैसे-जैसे क्रमशः चित्त की स्थिरता बढ़ती है, वैसे-वैसे आनन्द की मात्रा भी बढ़ती जाती है। अत्यन्त स्थिरचित्तता में परमानन्द की प्राप्ति होती है।

मन के भेदों को समझकर चित्त-स्थिरता की योग्यता प्राप्त करके ध्यान में प्रवृत्त होना चाहिए।

ध्यान की एकाग्रता को ठीक तरह से समझने के लिए एक उदाहरण उपयोगी होगा—

गुरु द्रोणाचार्य के पास राजकुमारों की धनुर्विद्या पूरी हो चुकी थी। सिर्फ धनुर्विद्या की श्रेष्ठ कला राधावेध की परीक्षा शेष थी। द्रोणाचार्य सभी राजकुमारों को लेकर वन में गये। मयूरपंख एक वृक्ष की शाखा से लटका दिया गया। द्रोणाचार्य ने मयूरपंख की ओर संकेत करते हुए कुमारों से कहा—

इस मयूरपंख की आंख (चन्द्रमा का-सा निशान अथवा चन्दोवा) वेधना है। तैयार हो जाओ।

द्रोणाचार्य ने सबसे पहले युधिष्ठिर को संकेत करके बुलाया। युधिष्ठिर धनुष पर बाण रखकर खड़े हो गये। तब द्रोणाचार्य ने पूछा-युधिष्ठिर! तुम क्या देखते हो?

युधिष्ठिर-गुरुजी, मैं आपको, अपने भाइयों को, वृक्ष को, मयूरपंख को, सभी को देख रहा हूँ।

ध्यानपूर्वक देखो, वत्स!

हां गुरुजी! मुझे सब कुछ स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

युधिष्ठिर के इस उत्तर से द्रोणाचार्य निराश हो गये। वे समझ गये कि यह लक्ष्यवेध नहीं कर सकता। फिर भी उन्होंने तीर छोड़ने की आज्ञा दी। लक्ष्य पर युधिष्ठिर का ध्यान केन्द्रित नहीं था, निशाना चूक गया। उसके बाद गुरुजी ने दुर्योधन आदि सभी कुमारों की परीक्षा ली। उनसे भी वही प्रश्न किया गया और सभी ने वही उत्तर दिया। सभी लक्ष्यवेध में विफल हुए। अन्त में अर्जुन की बारी आई। अर्जुन से भी गुरुजी ने वही प्रश्न किया-अर्जुन! क्या देखते हो? लक्ष्य पर दृष्टि जमाये अर्जुन ने उत्तर दिया-मुझे सिर्फ मयूरपंख ही दिखाई देता है। गुरुजी-ध्यान से देखो, वत्स! अर्जुन-अब तो मुझे चंदोवा ही दिखाई देता है। गुरुजी-क्या तुम्हें वृक्ष, अपने भाई और मैं कुछ भी नहीं दिखाई देता है? जी नहीं! अर्जुन की दृष्टि लक्ष्य पर एकाग्र हो चुकी थी, उसने बाण छोड़ा। लक्ष्यवेध हो गया। अर्जुन परीक्षा में सफल हुआ तथा महान् धनुर्धर बना। तात्पर्य यह है कि

जिस प्रकार लक्ष्यवेध के लिए अडोल एकाग्रता की आवश्यकता है, इसी प्रकार ध्यान में एकाग्रता की आवश्यकता है।

यह है ध्यान की एकाग्रता का महत्व। जिसके द्वारा आत्मा कर्मों को छिन्न-भिन्न कर सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन सकता है।

सीसं जहां सरीरस्स, जहा मूलं दुमस्स य।

सव्वस्स साहुधम्मस्स, तहा ज्ञाणं विधीयते।।

अर्थात् आत्मशोधन में ध्यान का ऐसा प्रमुख स्थान है जैसे शरीर में मस्तिष्क का तथा वृक्ष में उसकी जड़ का। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—

ध्यानान्निदग्धकर्मा तु सिद्धात्मा स्यान्निरञ्जनः।

अर्थात् ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा आत्मा कर्मों को जलाकर सिद्धस्वरूप पा लेता है। ध्यान की इच्छा रखने वाले साधक के लिए निम्न बातें जानने योग्य हैं—

(1) ध्याता, (2) ध्यान, (3) फल, (4) ध्येय, (5) ध्यान का स्वामी, (6) ध्यान के योग्य क्षेत्र, (7) ध्यान के योग्य समय, (8) ध्यान के योग्य अवस्था।

(1) ध्याता : वह व्यक्ति ध्यान का अधिकारी माना गया है जो जितेन्द्रिय है, धीर है, जिसके क्रोधादि कषाय शान्त हैं, जिसकी आत्मा स्थिर हो, जो सुखासन में स्थित हो एवं नासा के अग्रभाग पर नेत्र टिकाने वाला है।

(2) ध्यान : अपने ध्येय में लीन हो जाना अर्थात् आज्ञाविचयादि रूप में स्वयं परिणत हो जाना-रम जाना ध्यान है।

(3) फल : ध्यान का फल संवर निर्जरा है। भौतिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति के लिए ध्यान करना निषिद्ध है।

(4) ध्येय : जिस इष्ट का अवलम्बन लेकर ध्यान-चिन्तन किया जाता है, उसे ध्येय कहते हैं। ध्येय के चार प्रकार हैं— (1) पिंडस्थ, (2) पदस्थ, (3) रूपस्थ, (4) रूपातीत।

(5) ध्यान का स्वामी : (1) वैराग्य, (2) तत्त्वज्ञान, (3) निर्ग्रन्थता, (4) समचित्तता, (5) परिषहजय ये पांच ध्यान के हेतु हैं। इनके अतिरिक्त उच्च संस्कारिता, तत्त्वज्ञान प्राप्ति के लिए सद्गुरु की निरन्तर सेवा-शुश्रूषा, विषयों के प्रति उदासीनता, कषायों का निग्रह, व्रत धारणा, इन्द्रियजय, मन में अतुल शान्ति

और दृढ़तम संकल्प होना चाहिए। इनसे सम्पन्न व्यक्ति ध्यान का स्वामी कहलाता है।

(6) ध्यान का क्षेत्र : जहां ध्यान में विघ्न करने वाले उपद्रवों एवं विकारों की सम्भावना न हो, ऐसा क्षेत्र ध्यान के योग्य माना जाता है।

(7) ध्यान के योग्य काल : यद्यपि जब भी मन स्थिर हो उसी समय ध्यान किया जा सकता है फिर भी अनुभवियों ने प्रातःकाल को सर्वोत्तम माना है।

(8) ध्यान के योग्य अवस्था : शरीर की स्वस्थता एवं मन की शांत अवस्था ध्यान के लिए उपयुक्त कहलाती है।

□

# त्वचा रोग और निवारण

❁ पीयूष वी. पाण्ड्या

**त्वचा** हमारे शरीर का सबसे बड़ा अवयव माना गया है। त्वचा सौन्दर्य के निखार को प्रदर्शित करने का एकमात्र विकल्प है। इतना ही नहीं, व्यक्ति की त्वचा के तेज पर उसके चरित्र का आकलन किया जाता है। त्वचा व्यक्तित्व का निखार प्रदर्शित करती है। इसे व्यक्ति की सुंदरता के आधार पर विशेष स्थान भी प्रदान किया जाता है। त्वचा नहीं होती तो हमारा शरीर कुरूप-बदबूदार होता। सुन्दर, स्वच्छ त्वचा के बिना व्यक्ति का जीवन अधूरा है। इसलिए प्रकृति की अप्रतिम भेंट जो त्वचा के रूप में हमें मिली है। इसकी सुरक्षा के उपाय, इसके रखरखाव के प्रति जागृति होना जरूरी है। त्वचा में विकार पैदा होने के बाद व्यक्ति की सुंदरता नष्ट हो जाती है।

शरीर में पैदा होने वाले सभी प्रकार के विकारों को निष्कासित करने के लिए प्रकृति ने हमें महत्व के चार मार्ग दिए हैं। वे हैं—मल, मूत्र, पसीना और सांसों की क्रिया। इन चार अवयवों द्वारा समय-समय पर विकार निष्कासन होता रहता है। हमारी त्वचा पसीने के माध्यम से विकार बाहर निकालने का कार्य करती है।

**त्वचा की रचना**

त्वचा दो परत की बनी होती है। त्वचा के ऊपर के भाग को उपत्वचा (इपीडर्मिस) और नीचे दो तिहाई भाग अन्तः त्वचा (डर्मिस) कहलाती है। अन्तःत्वचा में रोम-कूप होते हैं, जिसमें बालों की जड़ें होती हैं। इसके उपरान्त रक्तवाहिनी तन्त्रिका-तन्तुओं के अतिरिक्त त्वचा में स्वेद ग्रन्थि होती है, जिसके द्वारा शरीर का विकार पसीने के रूप में बाहर निकलता है। साथ में शरीर का तापमान-नियंत्रण भी इस प्रक्रिया द्वारा होता है। यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है।

**त्वचारोग के कारण**

व्यक्ति साफ-सुथरा नहीं रहता, धूल, मिट्टी एवं धुंएँ वाले वातावरण के बीच जब रहता है तो स्वेद ग्रन्थि के रोमकूप ढंक जाते हैं। ऐसा होने से विकार का बाहर निकलना बंद हो जाता है और यही विकार त्वचा के अन्दरूनी स्तर पर फैलने लगता है जो विविध रूप में त्वचा रोग के स्वरूप में प्रकट होता है। त्वचा के कई रोग अस्वच्छता और गंदगी के कारण फैलते हैं। दाद, खाज, खुजली, सोरायसिस, सफिलिस, पैरों के पंजों की जलन आदि समस्याएं उभर आती हैं। इन त्वचा के रोगों की समस्याओं से बचने के लिए प्राकृतिक चिकित्सा में काफी उपाय है।

**उपचार :**

त्वचा रोग से पीड़ित व्यक्ति को हमेशा खुली एवं हवादार जगह में रहने की सुविधा करनी होती है। यह भी जरूरी है कि वातावरण अधिक गर्म या अधिक

ठण्डा न हो। सबसे पहले पाचन संस्थान को सशक्त बनाना चाहिए। कुछ रोज सादे पानी का एनिमा देकर आंतों की सफाई कराना आवश्यक होता है। पाचन संस्थान की कमजोरी के कारण अम्लता के रूप में विकार बढ़ता है जो त्वचा रोग का कारण बनता है। नीम की पत्तियों के रस मिले पानी का एनिमा देने से विशेष लाभ होता है। कब्ज का निवारण एवं आंतों की सफाई करने से शरीर स्वस्थ रहता है।

**कटिस्नान**

त्वचा रोग से पीड़ित व्यक्ति को प्रतिदिन नीम का रस मिला पानी का कटिस्नान देना आवश्यक है। कमर का भाग पानी में रहे, ऐसे पात्र को नीम के

रस वाले पानी से भरकर उसमें 30 मिनट प्रतिदिन बैठना है। इसे कटिस्नान कहते हैं। कटिस्नान लेने से त्वचा के रोम कूप खुलते हैं। वहां जमा मृत कोश दूर होते हैं। नीम के रस से वहां सफाई बनी रहती है। आंते सशक्त होती है।

**मिट्टी का लेप**

त्वचा पर मिट्टी का उपयोग सफल सिद्ध हुआ है। जहां पर फसल न ली जाती हो ऐसी खुली जमीन को दो-तीन फुट खोदकर अंदर की मिट्टी इकट्ठी करनी है। ऐसी मिट्टी में शरीर की अतिरिक्त गर्मी

सोखने का गुण होता है। उपयोगी मिट्टी प्राप्त करके नीम के रस में उस मिट्टी को 24 घण्टे भिगोना है। भिगोई मिट्टी को त्वचा रोग के स्थान पर लगाकर सूखने तक हल्की धूप में बैठे। मिट्टी सूख जाने पर ठण्डे पानी से अच्छी तरह से धो लेना है। याद रहे, नहाने में किसी भी प्रकार के साबुन का प्रयोग न करें। इस प्रकार प्रतिदिन एक बार मिट्टी का लेप करें।

मिट्टीका लेप लगाने से त्वचा की ऊपरी एवं अन्दरूनी सेहत पर रक्त संचार की क्रिया में गति आती है। त्वचा की कोशिकाओं में जमा अधिक एसिड खिंचकर बाहर आता है। त्वचा के कोश की शुद्धि होती है। त्वचा में निखार आता है। प्रतिदिन मिट्टी का लेप लगाने से चर्मरोग दूर होता है।

**धूपस्नान**

त्वचा को स्वस्थ रखने में विटामिन डी लाभदायी है। प्रातः एवं सायं की हल्की धूप से विटामिन डी प्राप्त होता है। सूर्य से जो किरणें निकलती हैं वे त्वचा की ऊपरी एवं नीचे की सतह से विकारों को दूर करती हैं। रोमकूप खुलते हैं। त्वचा की कोशिकाओं को उत्तेजित करके कार्यरत करने में विटामिन डी उपयोगी होता है। त्वचा का प्राकृतिक तेज विटामिन डी से प्राप्त होता है। शरीर की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए त्वचा का स्वस्थ रहना जरूरी है। शरीर का ज्यादा



भाग खुला रखकर शुद्ध हवा एवं सूर्य की रोशनी में रहने से हमारा स्वास्थ्य श्रेष्ठ बनता है। त्वचा रोग से बचने के लिए समुद्र के किनारे खुली हवा में सूर्य स्नान करना अधिक लाभदायी है। सूर्य की रोशनी नहीं मिलने से त्वचा की ताजगी कम हो जाती है।

**कपड़े**

त्वचा रोग से पीड़ित व्यक्तियों को सूती, खुले एवं पतले कपड़े पहनने चाहिए। ऐसे कपड़े पसीने को सोख लेते हैं और हवा की आवाजाही अच्छी तरह से हो पाती है। इससे त्वचा रोग नहीं होता है। टेरीलोन-टेरीकोटन के कपड़े पहनने से त्वचा रोग में बढ़ोतरी होती है। त्वचा रोग में शरीर को हवा और सूर्य का प्रकाश अधिक मिले, ऐसे कपड़े पहनने चाहिए।

**आंतों की सफाई**

‘पेट सफा तो रोग दफा’ इस कहावत के अनुसार हमें अपने पेट को साफ रखना जरूरी है। जिन्हें कब्ज है, उन्हें पेट सफाई पर पूरा ध्यान देना आवश्यक है। मैदा, तली चीजें, चीनी, गुड़ की मिठाईयां, बाजार की डिब्बा-बंद चीजों से बचना चाहिए।

**व्यायाम**

रोज प्रातः शुद्ध हवा में घूमने जाना एक अच्छा व्यायाम माना जाता है। साथ में गहरी सांस की प्रक्रिया जोड़ने से विशेष लाभ होता है। नदी या समुद्र के किनारे या किसी पहाड़ पर जाने से मन, तन को ताजगी का अहसास होता है। मन का शान्त एवं स्वस्थ हो तो तन भी स्वस्थ रहेगा। साथ में विचारों में निखार भी आएगा।

**भोजन**

स्वास्थ्य के लिए सबसे अधिक जरूरी है भोजन के प्रति सावधानी। अधिक नमक, चीनी, तली चीजें, ब्रेड, बिस्किट आदि मैदे से बनी चीजें, अधिक मिर्च-मसाले, तम्बाकू, गुटखा, शराब आदि से बचना आवश्यक है। नियमित भोजन करने से हमारा पाचन संस्थान सशक्त एवं सक्रिय होता है तो शुद्ध रक्त का निर्माण होने लगता है। रक्त को शुद्ध होने से त्वचा रोग दूर होता है।

सोरायसिस और एक्जिमा के लिए अपने भोजन में सावधानी बरतना जरूरी है। इन्हें विटामिन सी की आवश्यकता ज्यादा रहती है। साथ में विटामिन डी की आपूर्ति होने से परिणाम अच्छे मिलते हैं। विटामिन सी की आपूर्ति करने के लिए नीम्बू पानी और खट्टे फलों का रस सेवन करना चाहिए। सब्जियों के सूप एवं सलाद भी लाभदायी होते हैं। अन्न का सेवन कम करने से त्वचा रोग में लाभ अवश्य होता है। गेहूं, बाजरा, मक्का, दालें, चावल आदि का कम से कम उपयोग करना है। साथ में पानी की अधिकता बढ़ानी है। पर्याप्त व्यायाम, सात्विक आवश्यक भोजन व्यवस्था और जरूरी उपचार करने से त्वचा रोग बिना दवाई के जड़ से दूर हो जाते हैं।

त्वचा पर घाव, फोड़े होने से परेशानी ज्यादा रहती है। घाव और फोड़ों के लिए एक कारगर उपाय बताया गया है, शांत बहते हुए जल में, जिसमें मछलियां हों, दोनों पैर या घाव, फोड़े वाले भाग को रखने से मछलियां इस घाव को साफ करती हैं। साथ में वहां बसी सभी कीटाणुओं को मार देती हैं। रोजाना ऐसे जल में बैठने से या पैर रखने से घाव जल्दी भरते हैं। यह अनुभव सिद्ध प्रयोग है। हां एक बात का ध्यान रखना है कि ऐसा जल गंदा एवं दूषित न हो, निर्मल साफ सुथरा जल लाभदायी होता है।



### प्रेक्षाध्यान के संबंध में घोषणा

#### फार्म-4 (नियम 8 देखिए)

1. प्रकाशन स्थान	:	लाडनूं
2. प्रकाशन अवधि	:	मासिक
3. मुद्रक का नाम	:	राजेश कोठारी
क्या भारतीय नागरिक है	:	हां
यदि विदेश में है तो मूल देश का नाम	:	लागू नहीं
पता	:	तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनूं, नागौर 341306 (राजस्थान)
4. प्रकाशक का नाम	:	राजेश कोठारी
क्या भारतीय नागरिक है	:	हां
यदि विदेश में है तो मूल देश का नाम	:	लागू नहीं
पता	:	तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनूं, नागौर-341306 (राजस्थान)
5. संपादक का नाम	:	जैन लूणकरण छाजेड़
क्या भारतीय नागरिक है	:	हां
यदि विदेश में है तो मूल देश का नाम	:	लागू नहीं
पता	:	तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनूं, नागौर-341306 (राजस्थान)
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते, जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा समस्त पत्र के प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हो	:	जैन विश्व भारती, लाडनूं- 341306 (राजस्थान)

मैं, राजेश कोठारी एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य है।

(राजेश कोठारी)

दिनांक : 03 फरवरी, 2018

प्रकाशक के हस्ताक्षर



# पैरों में दर्द : सरल उपचार

डॉ. भगवान स्वरूप गुप्त

अपनी आयुवर्ग के लगभग प्रत्येक व्यक्ति को चलने-फिरने, उठने-बैठने और खेलने-कूदने में तकलीफ उठाते देखता हूँ तो मुझे आश्चर्य ही नहीं होता, अपितु बहुत दुःख भी होता है। क्या यह बुढ़ापे का परिणाम है? 'खेला बचपन, हंसी जवानी और बुढ़ापा तड़फाता है।' पैरों का दर्द भी तो एक तड़पन है, परन्तु 40-45 वर्ष के व्यक्तियों के पैरों के दर्द को देखकर आश्चर्य तथा दुःख होता है कि कहीं मुझे भी पैरों का दर्द कभी भुगतना पड़ेगा। पैरों में ही दर्द क्यों होता है, हाथों में क्यों नहीं : तो इसका उत्तर यह है कि हम पैरों को हाथों की अपेक्षा कम चलाते हैं। कार में बैठे हैं, पैरों पर चलना शून्य हो जाता है, परन्तु बात करते समय भी हाथ चलाते रहते हैं।

कुछ थेरेपीज के अनुसार जब पैरों की नसों में रुधिर का अवरोध हो जाता है या रुधिर में ऑक्सीजन की कमी आ जाती है तो वहाँ दर्द होने लगता है।

पैरों के दर्द का उपचार एवं रोकथाम

- अधिक से अधिक पैरों का संचालन कीजिए, इसके लिए 4-5 किलोमीटर प्रातः तेज रफ्तार से भ्रमण करें।

- पैरों में विशेषकर घुटनों की समस्या सबसे गम्भीर है। सर्वप्रथम एक-एक घुटने के ऊपर की मांसपेशियों को दोनों हाथों से खींचकर उन्हें आटे की भांति 20-25 बार गुंथिए/मंथिए। उसके बाद पैर फैलाकर बैठ जाइए। हाथों से कमर को कस लीजिए या हाथों को कूल्हों के समीप जमीन पर टेक लीजिए। पैरों के पंजों को मिला लीजिए। फिर उन्हें 20-25 बार पहले घड़ी की सुइयों की भांति घुमाइए, एड़ी जमीन पर रहेगी, फिर उन्हें विपरीत दिशा में घुमाइए, तत्पश्चात् पैर के पंजों को 10 बार आगे-पीछे मोड़िए। इसके बाद दोनों हाथों के बीच की दो अंगुलियां (मध्यमा एवं अनामिका) की मालिश कीजिए।

- रोजाना तिल अथवा सरसों के तेल से मालिश कीजिए। इसके 15 मिनट पश्चात् स्नान करें।

- इसके लिए स्वमूत्र की मालिश भी लाभदायक है। स्वमूत्र 7 दिन पुराना हो तो अधिक प्रभावशाली होगा।

- पैरों अथवा घुटनों के दर्द का प्रमुख कारण जंघाओं की मांसपेशियों का कमजोर पड़ना है। इसके लिए वज्रासन में बैठकर जंघाओं में जोर-जोर से मुक्के मारिए, नीचे पैरों की पिंडलियों पर भी घूँसे बरसाइए।

- ताम्बे के पात्र में शाम का रखा हुआ जल बिना कुल्ला-ब्रश किए जल्दी-जल्दी 4 गिलास पीजिए। ताम्बे का पात्र लकड़ी की मेज या पटले पर रखा होना चाहिए।

- रीढ़ की हड्डी के व्यायाम नित्य करें।

- सुबह शाम 500-500 बार ताली बजाइए। हथेली पर सरसों के तेल की एक बूंद मलिये।

- शाम को सोने से पूर्व बाएं हाथ से सीधे पैर के तलवे पर सरसों का तेल मलिये और इसी प्रकार दाएं हाथ से बाएं पैर के तलवे की मालिश कीजिए। इससे नींद भी अच्छी आएगी।

- उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते जब भी ध्यान आ जाए, मूलबंध लगाते रहिए।

- सुबह-शाम 100 कदम ऐड़ी-पंजों के बल पैरों की पिंडलियों में खिंचाव के साथ चलिये।

- भोजन को पीजिए और पानी को खाइए।

- दो नींबू के रस में गर्म पानी मिलाकर नित्य सेवन करें। इसमें थोड़ा लाहोरी नमक मिलाया जा सकता है।

- एक सामान्य आकार का आलू पानी में भली भांति धो कर उसके छिलके सहित छोटे-पतले टुकड़ों में काट लीजिए। उसे शाम को एक गिलास पानी में डाल दीजिए। सुबह उसके पानी को छानकर पी लीजिए। केवल एक माह पिएं।

- आधा चम्मच मेथी दाने का चूर्ण सुबह-शाम पानी से लीजिए।

- लहसुन 100 ग्राम, गुग्गुल 100 ग्राम, अजवायन 10 ग्राम, सोंठ 10 ग्राम और पीपल 10 ग्राम। लहसुन की कलियों को छील लीजिए। इसे दही के मट्टे में मिला दीजिए। 24 घण्टे बाद इसे साफ पानी में धो लीजिए। लहसुन को फिर नए दही/मट्टा में भिगो दीजिए, और 24 घण्टे पश्चात् साफ पानी में धोकर फिर नए दही/मट्टा में भिगो दीजिए। 24 घण्टे बाद इसे अच्छी प्रकार से दो-तीन बार पानी से धो लीजिए। इस प्रकार से लहसुन की कलियां 72 घण्टे तक दही/मट्टा में रहेगी। अन्त में इसका पानी निचोड़कर

अखबार के पन्ने पर सुखा दीजिए। यदि अखबार का पन्ना भीग जाए तो दूसरे पन्ने पर सुखा दीजिए। इसे सदैव छाया में ही सुखाएं।

गुग्गुल को भगोने में पानी डालकर चूल्हे पर रख दीजिए। पानी गुग्गुल से 4-5 अंगुल ऊपर तक रहे। गुग्गुल एक वृक्ष का गोद है, इसमें लकड़ी की छाल मिली होती है। इसे उस समय तक उबालिए जब तक यह पूरा पिघल न जाए। अब इसे कढ़ाई में छान लीजिए। लुगदी जिसमें लकड़ी की छाल के टुकड़े होंगे,

उसे फेंक दीजिए।

जब लहसुन की कलियां भली-भांति सूख जाएं, उन्हें देशी घी में तल लीजिए। जब कलियां लाल हो जाएं तो कढ़ाई को नीचे उतारकर कच्छुल से चलाते रहिए। इन कलियों को छाया में सुखा दीजिए। जब यह कड़ी हो जाए तो इसे अजवायन, सोंठ तथा पीपल के साथ अच्छी प्रकार से कूट लीजिए। अब गुग्गुल के पानी को कढ़ाई में चूल्हे पर चढ़ाएं और कुटी हुई सामग्री इसमें डालकर कच्छुल से चलाते रहिए। जब तक यह इतना गाढ़ा हो जाए कि इसकी गोली बनाई जा सके, कढ़ाई को नीचे उतारकर कच्छुल से इसे चलाते रहिए। ठण्डा होने पर मटर के बराबर गोलियां बनाकर छाया में सुखा लें और एक ढक्कनदार शीशी में बन्द कर लें। सुबह शाम एक-एक गोली पानी या दूध के साथ लेते रहें। ध्यान रहे 5-10 दिनों में भी दर्द में कोई अन्तर नहीं आएगा। 15 दिनों पश्चात् लाभ प्रतीत होने लगेगा तथा एक माह में आपके पैर के ही नहीं, अपितु शरीर के किसी भी भाग के दर्द समाप्त हो जाएंगे। यदि कुछ कमी हो तो गोली सेवन कुछ दिनों के लिए और बढ़ा सकते हैं।

□

# दंत रोग

✻ डॉ. सचिन लोढ़ा

## जी

वन का का आधार भोजन है। स्वस्थ और ऊर्जावान जीवन के लिए संतुलित और पौष्टिक भोजन जहां जरूरी है, वहीं स्वस्थ और मजबूत दांतों का होना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। खूब चबा-चबाकर लिया गया आहार ही शरीर के लिए उपयोगी होता है। जो स्वस्थ और मजबूत दांतों के बिना बिल्कुल भी सम्भव नहीं। खूब चबाकर खाया हुआ भोजन ही हमारे शरीर को शक्ति देता है। स्वस्थ मजबूत और चमकीले दांत व्यक्तित्व को और भी सुन्दर व प्रभावी बनाते हैं। इसलिए हमें दांतों की रचना और सुरक्षा के बारे में जागरूक रहना चाहिए।

दांत के दो प्रमुख हिस्से होते हैं। crown जो कि मुंह में दिखता है और root या जड़ जो जबड़े की हड्डी में होती है। crown में ऊपर की परत को Enamel कहते हैं जो कि मानव शरीर का सबसे कठोर तत्व होता है। उसके नीचे Dentine होता है जिसमें दांतों की नसों का अन्तिम सिरा होता है। Dentine के नीचे जीवनदायी Pulp होता है जिसमें तंत्रिकाओं और रक्तवाहिनियों का जाल होता है। इन्हीं से दांतों को रक्त की आपूर्ति होती है तथा हमें ठण्डा गर्म इत्यादि संवेदनाओं का अहसास होता है।

दांतों की आवश्यक देखभाल

नियमित रूप से सुबह एवं रात को दांतों को दोनों बार ब्रश करना, हर खाने के बाद कुल्ला करना, बार-बार मीठी व रस वाली मिठाइयों का सेवन न करना, गर्म व ठण्डा साथ में न लेना। इन मुख्य बातों का ध्यान रखने से हम दांतों की 90 प्रतिशत बीमारियों से बच सकते हैं।

दांतों की मुख्य समस्याएं व इलाज

दांतों में प्रमुख तौर पर दो ही बीमारियां पाई जाती हैं। दांत में बैक्टीरिया क्षय यानी 'केविटी' और मसूड़ों की बीमारी। दोनों का मुख्य कारण एक ही है। वह है-दांतों की ढंग से सफाई न करना। जब खाने के कण दांतों में फंसे रह जाते हैं तब वहां एकत्र बैक्टीरिया अम्ल बनाते हैं, उससे 'इनेमल' में 'केविटी' बन जाती है। इस समय इसे साफ करके भरा जा सकता है। जब यह 'पल्प' तक पहुंच जाती है तो इसे 'आरसीटी' या 'केप' द्वारा ही बचाया जा सकता है।

इसी तरह जब खाने के कण मसूड़ों में इकट्ठे होते हैं तो वे मसूड़ों व दांतों के बीच जमने लगते हैं तथा मसूड़ों दांतों से नीचे सरकने लगते हैं। इससे मसूड़ों और दांतों की जड़ वाली हड्डी बैक्टीरिया द्वारा उत्पन्न अम्ल से नष्ट होकर गलने लगती है। जैसे-जैसे हड्डी गलती है, दांत ढीला होकर हिलने लगता है।

इससे बचने के लिए

- हमेशा मुलायम ब्रश का इस्तेमाल करें।

- ब्रश को दाएं-बाएं न रगड़कर ऊपर-नीचे रगड़ें, जिससे दांतों के बीच में फंसे कण निकल सकें।

- सस्ते मंजन, तम्बाकू और राख का इस्तेमाल न करें।

- हर 6 महीने में दन्त चिकित्सक से दांतों की जांच करवाएं।

- गुटखा, पान, सुपारी की आदत छोड़ें।

- दांतों की बीमारी के इलाज के लिए नीम-हकीमों के पास न जाएं।

- ज्यादा कठोर वस्तुएं न चबाएं।

- रेशेयुक्त आहार (फल, सब्जियां, सलाद) लें। मीठे खाद्य पदार्थों, फास्ट-फूड का अधिक इस्तेमाल न करें।

- ठण्डा व गर्म एक साथ न लें जैसे गर्म रोटी के बीच में ठण्डे पानी का सेवन नहीं करें।

- कोल्ड ड्रिंक्स एवं अत्यन्त खट्टे पदार्थों का सेवन बिल्कुल न करें। यह दांतों के लिए अत्यधिक हानिकारक है।

- दांतों को तिनके या आलपिन से न कुरेदें बल्कि धागे का इस्तेमाल करें।

नकली दांत

16+16 दांतों से चबाने की क्रिया पूर्ण रूप से होती है। यदि एक भी दांत इनमें से निकाल दिया जाता है तो उसके ऊपर या नीचे का दांत व आजू-बाजू के दोनों दांत साधारणतः 5-6 वर्ष में खराब हो जाते हैं। इस प्रकार हम एक तरफ से चबाना छोड़कर दूसरी तरफ से ज्यादा चबाते हैं, तो असंतुलित चबाने की क्रिया से सभी दांतों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है तथा बाकी दांत भी हिलने लगते हैं। अतः किसी दांत को हटाते ही नया लगवाकर बाकी दांतों को बचाया जा सकता है।

दूध के दांतों की देखभाल

6 माह की उम्र से ढाई वर्ष तक जो दांत आते हैं, उन्हें दूध के दांत कहा जाता है। इनका महत्व अत्यधिक होता है क्योंकि बच्चे 12 वर्ष तक इन्हीं दांतों से भोजन चबाकर खाते हैं। इसमें कीड़ा लगने व इन्हें खोने पर इनके बीच बनने वाले दांतों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वे अपनी सही जगह से दूर, मुंह में कहीं और आते हैं तथा टेढ़े-मेढ़े दांतों की शुरुआत होती है।

निवारण

प्रारम्भिक दांतों के आते ही उन्हें साफ रखने की आदत डालें। छोटे बच्चों को छोटे ब्रश से दांतों की सफाई कराएं तथा बच्चों में स्वयं ब्रश करने की आदत डालें। यदि शुरू से ही दांतों की सही देखभाल करें तो दंत रोगों से बच सकते हैं।

□

मनुष्य में जितनी क्षमता होती है, उसका उतना उपयोग नहीं होता।

इसका एक कारण है संकल्प का अभाव। - आचार्यश्री महाश्रमण

श्रद्धावनत

प्रकाश बरड़िया (पारस), रीता, पीयूष, अमन  
(हैदराबाद-सरदारशहर)



## प्रेक्षा ध्यान हास्य योग कार्यशाला

आदत एवं स्वभाव में परिवर्तन लाता है प्रेक्षाध्यान : मुनि प्रशांत

कालीकट। मुनि प्रशांत कुमार जी के सान्निध्य में मुनि कुमुद कुमारजी के निर्देशन प्रशिक्षक मुकेश गिरिया के मार्ग दर्शन में प्रेक्षाध्यान हास्य योग कार्यशाला आयोजित हुई। शिविरार्थियों को सम्बोधित करते हुए मुनि प्रशांत कुमार ने कहा- प्रेक्षाध्यान में अनेक तरह के प्रयोग कराए जाते हैं। प्रेक्षाध्यान के द्वारा जीवन में स्वभाव में आदतों में परिवर्तन आता है। ध्यान से हमारे शरीर के रसायन में बदलाव आता है। क्लृप्त भावनाओं से व्यक्ति का व्यवहार एवं आचरण बिगड़ता है। प्रेक्षाध्यान में आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक पद्धति का समावेश किया गया जिससे हमारा सर्वांगीण विकास हो सके। स्वस्थ जीवन के लिए योग साधना से विचारों में सकारात्मकता का विकास होता है। उसका व्यवहारिक जीवन भी सबके साथ सौहार्द पूर्ण और सम्बंधों को प्रेमपूर्ण बनाने वाला बन जाता है। प्रेक्षाध्यान पद्धति से हजारों लोगों ने अपने जीवन में परिवर्तन महसूस किया है। उनके जीवन की दिशा ही बदल जाती है। चिंतन में समत्व भाव पैदा होता है।



मुनि कुमुदकुमार ने कहा कि मन के दो कार्य होते हैं चिंता या चिंतन। चिंतन से विषय कषाय से विरक्ति मिलती है। मन शरीर को एवं शरीर मन को प्रभावित करता है। शास्त्रों में मन को अनेक उपमाएं दी गईं। मन अपने आप में चंचल नहीं होता है उसे तो राग-द्वेष की तरंगें मिलने से चंचल बन जाता है। मन को वश में करना कठिन जरूर है लेकिन अभ्यास से वह हो जाता है। मन को वश में करने वाला आनंद का जीवन जीता है। ध्यान की साधना के लिए शरीर वाणी मन को संतुलित करना जरूरी है। श्वास प्रेक्षा के द्वारा मन को संयमित रख सकते हैं। भगवान महावीर ने प्राण केन्द्र पर विशेष ध्यान का प्रयोग किया।

प्रशिक्षक डॉ. मुकेश गिरिया ने कहा कि आहार और अध्यात्म का गहरा संबंध है। आहार मन को प्रभावित करता है। तामसिक एवं राजसिक आहार से आवेग एवं आवेश बढ़ता है। सात्विक आहार से तन व मन दोनों हल्के रहते हैं। वर्तमान समय में बढ़ती बीमारियों का कारण आहार का अविवेक है। दूषित भावनाओं से बनाया एवं खाया हुआ भोजन बीमारी पैदा करने के साथ सोच व्यवहार को भी बिगाड़ देता है। भोजन करने से पूर्व अपने इष्ट का स्मरण करना चाहिए। भोजन को धीरे-धीरे चबाकर करने से पाचन क्रिया सही रहती है। बेमेल भोजन से शरीर में बीमारी होती है।

सभा अध्यक्ष देवचंद संचेती ने बताया कि राजस्थान जैन संघ के तत्वावधान में आयोजित शिविर में प्रशिक्षक डॉ. मुकेश गिरिया से प्रातः योगासन कराने के साथ बताया कि योग से हमारा शरीर स्वस्थ बनता है। शरीर में अतिरिक्त चर्बी कम होने के साथ ऊर्जा एवं स्फूर्ति आती है। शारीरिक एवं मानसिक थकान को दूर करने के लिए कायोत्सर्ग का प्रयोग करना। दूसरे चरण में हास्य योग क्यों जरूरी पर बताया जीवन की भागदौड़ में व्यक्ति तनाव से भरा हुआ है। हंसना भूल गया है। हंसने से मानसिक तनाव दूर होता है। हास्य के प्रयोग का खूब मजा लिया। चित्त शुद्धि के लिए प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करवाया। रमेश मेहता ने डॉ. मुकेश गिरिया का परिचय प्रस्तुत किया। श्री राजस्थान जैन संघ रमेश मेहता, राजकुमार बाफना, रमेश नाहर, अशोक संचेती, पवन कोठारी ने प्रशिक्षक डॉ. मुकेश गिरिया का सम्मान किया। हीरालाल बोहरा, देवचंद संचेती, डॉ. राजेन्द्र दुगड़ ने शिविर के अनुभव बताए।

## राष्ट्रपति को प्रेक्षाध्यान के बारे में बताया



सिकन्दराबाद। अणुव्रत-अनुशास्ता आचार्यश्री महाश्रमणजी के आशीर्वाद से अणुव्रतसेवी निर्मला बैद ने राष्ट्रपति रामनाथ कोविन्द से भेंट कर वार्ता की। राष्ट्रपति ने हैदराबाद में आगमन के दौरान मिलने का समय दिया था। राष्ट्रपति को आचार्यश्री के अहिंसा यात्रा के बारे में व सुखसाता के समाचार बताये। अणुव्रत जीवन-विज्ञान व प्रेक्षाध्यान के कार्यक्रमों के बारे में विस्तार से बातचीत हुई तथा उनको जैन धर्म का साहित्य भेंट किया गया। इस अवसर पर निर्मला बैद के साथ हनुमान मल व जिनेन्द्र जैन भी थे।



## शिष्टमण्डल ने मुनिश्री से सीखा प्रेक्षाध्यान



हांसी। प्रेक्षाप्राध्यापक 'शासनश्री' मुनिश्री किशनलालजी के सान्निध्य में एक विशिष्ट व्यक्तियों का शिष्टमण्डल उपस्थित हुआ। जिसमें राष्ट्रीय अवार्ड से सम्मानित भिवानी जिले के प्रिंसीपल डॉ. एस.के. मिश्रा, हरियाणा नागरिक कल्याण परिषद के प्रधान श्रेयांस कुमार जैन, संजय अग्रवाल, प्रो. विनोद जादुका, मनीष शैलवी ने मुनिश्री से प्रेक्षाध्यान आदि के बारे में चर्चा करते हुए प्रेक्षाध्यान का प्रयोग किया। तत्पश्चात् शिष्टमण्डल ने मुनिश्री द्वारा लिखित 'दी सिक्रेट ऑफ पास्ट लाईव' व 'ए योगा न्यू लाईफ स्टाईल' पुस्तक समीक्षा हेतु ग्रहण की। मुनिश्री ने कहा कि कोई भी व्यक्ति जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान के प्रयोग सीखकर जीवन को बदलकर शांति को प्राप्त हो सकते हैं। ज्ञातव्य है कि मुनिश्री के पास प्रेक्षाध्यान के प्रयोग सीखने के लिए देश-विदेश से भी अनेक लोग आते रहते हैं इससे पूर्व भी एक रसियन डेलिगेट्स आया था जो दस दिन हांसी में रुककर मुनिश्री से ध्यान के प्रयोग सीखे।

## रूस की महिला ओल्गा और लादा ने भारत की संस्कृति को जाना

रूस से आकर सीखा प्रेक्षाध्यान

हांसी। रूस से प्रेक्षाध्यान सीखने आई ओल्गा और लादा भारत की संस्कृति व लोगों से बेहद प्रभावित हैं। दस दिन तक प्रेक्षाध्यान सीखने के बाद लौटते समय उन्होंने अपने अनुभव साझा किए। उन्होंने कहा प्रेक्षाध्यान से उन्हें बेहद शांति मिली है। वह बार-बार भारत आकर अच्छा जीवन जीना चाहती है। ओल्गा, लादा और उनके बच्चे फोमा व केसिनो प्रेक्षाध्यान सीखने के बाद वापस रवाना हो गए। यहां प्रेक्षाध्यापक 'शासनश्री' मुनिश्री किशनलालजी से प्रेक्षाध्यान सीखने के लिए करीब दस दिन हांसी में रहे। थोड़ी-बहुत हिंदी भी सीख ली। तेरापंथ युवक परिषद के प्रधान राहुल जैन ने बताया कि रूस से लोग प्रेक्षाध्यान जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण लेते हैं। जैन संस्कृति से सूत्र और मंत्र सीखते हैं।



उन्होंने बताया कि उन्हें यह जीवन शैली बहुत अच्छी लगती है। उन्होंने कहा कि अब आगे यह लोग राजस्थान के नागौर जिले के लाड़नूँ

कस्बे में स्थित जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय में कुछ समय रहना चाहते हैं। प्रशिक्षण के अपने अनुभव बताते हुए ओल्गा और लादा ने कहा कि प्रेक्षाध्यान से उन्हें शान्ति मिलती है। वह बार-बार भारत में आकर अच्छा जीवन जीना चाहती है। भारत के लोग अच्छे हैं और प्रेम करते हैं।

## प्रेक्षावाहिनी का गठन

नोखा। बहुश्रुत शासन गौरव साध्वी राजीमतीजी के सान्निध्य में प्रेक्षावाहिनी का गठन किया गया। साध्वीश्री ने कहा सेवा, संस्कार, संगठन को किशोर जीवन में उतारें। संघीय कार्यों को निष्ठा से करें। चरित्र सम्पन्न-व्यसन मुक्त रहें। प्रेक्षावाहिनी के लिए साध्वीश्री जी ने अपने आशीर्वाचन में कहा-जीवन में शक्ति, संयम, सहिष्णुता का विकास आवश्यक है। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए युवा उद्यमी कमलचन्द लालवाणी ने कहा कि आस्था, निष्ठा से सहयोग करने की भावना रखें। सभा अध्यक्ष दिलीप बैद, मंत्री लालचन्द छाजेड़, तेयुप कार्य समिति अखिल भारतीय सदस्य गोपाल लूणावत, मनोज धीया, महासभा क्षेत्रीय प्रभारी इन्द्रचन्द बैद 'कवि' हड़मान लालवाणी, तेयुप अध्यक्ष सुनील बैद, प्रेक्षा संवाहिका मंजु बैद, अभातेयुप के पूर्व अध्यक्ष शेखर बैद, किशोर भूरा आदि ने आध्यात्मिकता, प्रेक्षाध्यान, सहिष्णुता का जीवन जीने के बारे में विचार रखे। 21 सदस्यों को शपथ कमल किशोर लालवाणी ने ग्रहण करवाई। महाप्राण ध्वनि एवं प्रेक्षाध्यान का प्रयोग साध्वी राजीमती जी ने करवाया।

## प्रेक्षावाहिनी की मासिक कार्यशाला

पीलीबंगा। महीने के अन्तिम रविवार को प्रेक्षावाहिनी के तत्वावधान में जैन भवन में मासिक कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला का विषय ध्यान और योगिक क्रिया था। प्रेक्षावाहिनी के संवाहक ओमप्रकाश जैन ने कार्यशाला में योगिक क्रियाएं करवाते हुए महाप्राण ध्वनि, कायोत्सर्ग, अंतर्वात्रा, दीर्घश्वास के प्रायोगिक प्रयोग करवाए तथा प्रेक्षावाहिनी के हर सदस्य को ध्यान की प्रारम्भिक क्रिया, महाप्राण ध्वनि और अंतर्वात्रा आदि सीख कर दूसरों को करवाने के अभ्यास पर जोर दिया। प्रेक्षावाहिनी के सह-संवाहक सतीश पुगलिया ने बताया कि प्रेक्षावाहिनी के सभी सदस्यों ने वर्ष-2017 के अन्तिम दिन पर आपस में विगत वर्ष में हुई गलतियों को भूलकर नववर्ष की आध्यात्मिक शुभकामनाएं प्रेषित की। कार्यशाला में महासभा के कार्यकारिणी सदस्य देवेन्द्र बांठिया, पूर्व तेषुप अध्यक्ष महेन्द्र नोलखा, राजीव दुग्गड, संजीव जैन, प्रवीण बांठिया, राजकुमार बैद, प्रेम छाजेड़ एवं मालचंद पुगलिया का विशेष सहयोग रहा।



## राजरहाट कोलकाता में एक दिवसीय प्रेक्षाध्यान कार्यशाला



राजरहाट। प्रेक्षा प्रशिक्षक रणजीत दूगड़ के निर्देशन में सात जनवरी को प्रेक्षाध्यान एवं णमोकार मंत्र अभ्यास कार्यशाला का आयोजन प्रज्ञालय मेडिटेशन सेन्टर, राजरहाट में किया गया। एक दिवसीय कार्यशाला में लगभग 25 व्यक्तियों की उपस्थिति रही। प्रशिक्षक द्वारा अर्हम् जाप एवं मंत्र प्रयोग का विशेष अभ्यास करवाया गया।

## मूक बधिर विद्यालय में प्रेक्षाध्यान प्रयोग

नागपुर। जैन विद्या, विदर्भ की आंचलिक संयोजिका सरोज भंडारी द्वारा संचालित श्री रामदेव बाबा अपंग एवम मूक बधिर विद्यालय, वर्णी में 80 बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। नागपुर से प्रेक्षा प्रशिक्षक आनंदमल सेठिया, डॉ. अनिता अगरकर व प्रेमलता सेठिया ने प्रेक्षाध्यान के विभिन्न प्रयोगों, भक्तामर स्तोत्र के श्लोक और रंग चिकित्सा द्वारा बच्चे कैसे लाभान्वित हो सकते हैं के बारे में शिक्षिकाओं को विस्तार से बताया। उन्होंने महाप्राण ध्वनि, योगिक क्रियाओं, प्राणायाम, हास्य योग आदि के प्रयोग भी कराए। डॉ. अनिता अगरकर ने कहा कि इन प्रयोगों के नियमित अभ्यास से स्कूल के 50 प्रतिशत बच्चे काफी हद तक ठीक हो सकते हैं। आनंद सेठिया ने कहा कि महाप्राण ध्वनि के अभ्यास से निश्चित रूप से लाभ मिलता है। प्रेमलता सेठिया ने भंडारी की सेवा भावना की सराहना करते हुए बच्चों के उज्ज्वल भविष्य की कामना की। स्कूल की शिक्षिका चित्रा लारोकर व प्रभा बोधे ने भी मनोयोग पूर्वक सारे प्रयोग किये एवम् नियमित बच्चों को प्रयोग कराने का संकल्प किया। स्कूल संचालिका भंडारी व सभी शिक्षिकाओं ने तीनों प्रशिक्षकों के प्रति आभार ज्ञापन करते हुए बच्चों द्वारा हस्तनिर्मित अति आकर्षक पुष्पों द्वारा सभी का सम्मान किया।



## प्रेक्षा कक्षा का आयोजन

पाली। प्रेक्षावाहिनी पाली के तत्वावधान में 'शासनश्री' मुनि विमलकुमारजी के सान्निध्य में तेरापंथ भवन में मुनि धन्यकुमारजी के निर्देशन में प्रेक्षाध्यान की कक्षा का आयोजन किया गया। सबसे पहले प्रेक्षा प्रार्थना का संगान किया, इसके बाद ध्यान करवाया गया। 'शासनश्री' मुनिश्री विमलकुमारजी ने बताया कि आचार्यश्री तुलसी-आचार्य महाप्रज्ञ युग के अनेक अवदानों में एक अवदान है प्रेक्षाध्यान। ध्वनि प्रेक्षा भी इसी के अंतर्गत है। अगर वातावरण ध्वनिमय हो, शोरगुल अधिक हो तो प्रतिक्रिया रहित होकर आने वाली ध्वनियों को समतापूर्वक सुनना ही प्रेक्षाध्यान के अन्तर्गत ध्वनि प्रेक्षा है। प्रेक्षावाहिनी की कक्षा में सुरेन्द्र सालेचा, भीमराज खटेड़, अचलचंद चौपड़ा, किरणराज खटेड़, मगराज गादिया, सज्जनराज बांठिया, सोहनराज चौपड़ा, डूंगरचन्द चौपड़ा, प्रकाश नाहर, काजुदेवी कांकरिया, शांता खटेड़, कौशल्या वैद मूथा, दीपिका वैद मूथा, लीना वैद मूथा, कमलादेवी थोका आदि समाज के सैकड़ों श्रावक-श्राविकाएं उपस्थित थे।

वणी। आचार्यश्री महाश्रमणजी की सुशिष्या शासनश्री साध्वीश्री सत्यवतीजी आदि ठाणा 4 के सानिध्य में नव गठित तेरापंथ युवक परिषद के तत्वावधान में प्रेक्षाध्यान कार्यशाला का आयोजन किया गया। साथ में भक्तामर से रोग निदान की उपयोगी जानकारी दी गई। वणी में इस तरह का यह पहला कार्यक्रम आयोजित हुआ जिसका 80 भाई-बहनों ने लाभ लिया। नागपुर से समागत प्रेक्षा प्रशिक्षिका प्रेमलता सेठिया ने प्रेक्षागीत का संगान करके ध्यान के 5 उपसम्पदायें बताईं नागपुर के मुख्य प्रेक्षा प्रशिक्षक आनंद सेठिया ने आसन प्राणायाम की विधि व फायदे बताते हुए सरल प्रयोग करवाये नवकार मंत्र का ध्यान तथा ध्यान के 4 चरणों का सुंदर प्रयोग करवाया। उनकी प्रेरणा से प्रेक्षावाहिनी का भी गठन किया गया। इसकी संवाहक श्वेता जैन को बनाया गया। नागपुर की डॉ. अनिता आगरकर ने भक्तामर स्रोत के जप से बीमारियों का इलाज कैसे करें। इसकी विस्तृत जानकारी दी। कई युवक-युवतियों ने अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त किया। तैयुप के गौरव भंडारी और रोहित गेलड़ा तथा महिलामण्डल अध्यक्षा संगीता भंडारी और विद्या चिंडालिया ने तीनों का साहित्य से सन्मान किया। साध्वीश्री शशिप्रज्ञाजी ने सुमधुर गीत का संगान किया। साध्वी श्री ने मंगल उदबोधन में सबको आसन-ध्यान के प्रयोगों को निरंतर अभ्यास करते रहने की प्रेरणा दी।



## लाडनूं में योग नैचुरोपैथी अस्पताल और कॉलेज खोलेगा जैन विश्वभारती

लाडनूं। जैन विश्वभारतीय के शैक्षणिक खंड के सेमिनार हॉल में कुलपति प्रो. बच्छराज दुग्गड़ ने 2018 के शुभागमन पर आयोजित एक कार्यक्रम को सम्बोधित करते हुए कहा कि इस साल हमारा विश्वविद्यालय यहां योगा नेचुरोपैथी हॉस्पिटल एवं कॉलेज खोलने जा रहा है। उन्होंने कहा कि किसी संस्थान की श्रेष्ठता एवं सर्वोच्चता तभी प्रतिष्ठापित हो सकती है जब वहां के छोटे से बड़े प्रत्येक सदस्य की सक्रिय भागीदारी हो। उन्होंने गत वर्ष किये गये सभी सदस्यों के योगदान की सराहना करते हुए भविष्य में सभी के प्रयास के संस्थान को नित नई ऊंचाइया मिले, ऐसा विश्वास व्यक्त किया। वर्ष 2018 में प्रस्तावित कार्ययोजनाओं का जिक्र करते हुए प्रो. दुग्गड़ ने योगा नेचुरोपैथी हॉस्पिटल एवं कॉलेज खोलने की संभावना व्यक्त की। सभी से अपेक्षा की कि सभी अपने ध्येय पथ पर निरन्तर गतिमान रहें। गौरतलब है कि इससे पूर्व मेडिकल कॉलेज खोले जाने के संबंध में विश्वविद्यालय के अनुशास्ता आचार्य महाश्रमण ने इसकी अनुमति दे दी थी और उससे पहले यूजीसी से भी इसके लिए हरी झंडी मिल चुकी थी। कार्यक्रम में दूरस्थ शिक्षा निदेशक ने संस्थान के विकास में एकजुट होकर लक्ष्य को अर्जित करने पर बल दिया। कुलसचिव विनोद कुमार कक्कड़ ने नए वर्ष में आत्मविश्वास से सभी कार्य करने के लिए प्रेरित किया। समणी नियोजिका प्रो. ऋजुप्रज्ञा ने कहा कि संस्थान के सदस्यों में विश्वास कूट-कूटकर भरा हुआ है। उन्होंने कहा कि सभी सदस्य संस्थान के प्रति समर्पित हैं और संस्थान के विकास में संलिप्त हैं। यह भाव नववर्ष में और विकसित होना चाहिए।

## प्रेक्षाध्यान हास्य योग कार्यशाला के अनुभव ( कालीकट )

- बहुत सुंदर आयोजन किया गया। 31 दिसंबर 2017 को अलविदा किया गया, सुबह योगासन, 10 से 1 बजे तक प्रेक्षा ध्यान व हास्य योग। अब तक प्रेक्षाध्यान के बारे में सुना या पढ़ा, पर आज स्वयं इस शिविर में रहकर अनुभव किया यह अति अनुकरणीय व आज के युग में अति आवश्यक है। दोपहर 2 से 3 बजे तक दीर्घश्वास व कायोत्सर्ग व हमारे खाने-पीने का नियमित रूप जाना, हमारे स्वास्थ्य के लिए कैसा भोजन हो, कब लें व कैसे लें। आज मैं मुकेश गीड़िया के प्रति आभार करता हूं, जिन्होंने इतना सुंदर प्रशिक्षण दिया।

डॉ. राजेन्द्र दुग्गड़, साधुमार्गी सम्प्रदाय

- इस शिविर में जो सात्विक सुख अनुभव किया उसके लिए शब्द नहीं। पर कुछ समय के लिए ही हमें हमारा बचपन जीने को मिला। इस शिविर में सबके चेहरे पर जो प्रसन्नता अनुभव की वह रोम रोम को पुलकित करने वाली थी। आज पहली बार, नववर्ष का स्वागत किया यह प्रशंसनीय है। हमारे कालीकट में आज के दिन को कभी भुला नहीं सकेंगे। मुनिवर आपके सान्निध्य में जो

पाया वह अनमोल है। मुकेश गीड़िया के प्रति पूरे जैन संघ की और से आभार व्यक्त करता हूं।

रमेश जी मेहता, राजस्थान जैन संघ

- जीवन जीने की कला जिसको हम भूलते जा रहे हैं। जहां समय का हमें भान नहीं, स्वास्थ्य के प्रति सजगता नहीं है। शिविर में जाना कि वास्तव में हमारे लिए क्या छोड़ने लायक है और क्या अपनाना चाहिए। हम कितने सौभाग्यशाली हैं, हमारे धर्म में बिना दवा के इलाज है। आजकल हम कई सेंटर में हजारों रुपये खर्च कर देते हैं, पर संतुष्टि नहीं होती। आज का अनुभव बहुत सुंदर रहा। एक दिन में लगता है एक घूंट ही पानी पिया है। हमें इस पद्धति पर चिंतन कर अपने जीवन में लागू करना चाहिए। हमारे भीतर बहुत कुछ शक्तियां हैं, जिसे कुछ हद तक जाना अनुभव किया। बचपन को पुनः जीने का अवसर मिला। भोजन पर जो प्रशिक्षण दिया अनुकरणीय था।

देवचंद संचेती, अध्यक्ष, तेरापंथ सभा

प्रेक्षाध्यान शिविर में भाग लेने वाले शिविरार्थियों से अनुरोध है कि आप अपने अनुभव हमें प्रकाशन हेतु भेजें। -सम्पादक





# जैन विश्व भारती प्रकाशन सर्वश्रेष्ठ प्रेरणादायक पुस्तकें जो आपकी जिंदगी को बदल देगी।



मूल्य :



मूल्य : 50/-



मूल्य : 120/-



मूल्य : 80/-



मूल्य : 150/-



मूल्य : 180/-



मूल्य : 100/-



मूल्य : 50/-



मूल्य : 80/-



मूल्य : 130/-



मूल्य : 90/-



मूल्य : 90/-



मूल्य : 140/-

\* धार्मिक पुस्तकें \* संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य \* दर्शन साहित्य  
\* इतिहास पुस्तकें \* बाल साहित्य \* प्रेक्षाध्यान एवं जीवन विज्ञान पुस्तकें  
\* एकांकी साहित्य \* कथा साहित्य \* जीवन उपयोगी साहित्य

Date of Publication : 05.02.2018

डाक पंजीयन संख्या: नागौर/ 016/15-17

Date of Posting : 05/07-02-2018

भारत सरकार पंजीयन संख्या : 35209/80

If undelivered please return to : Jain Vishva Bharati, Ladnun - 341306, Dist. Nagaur (Raj.) Ph. : 01581-226080



**Shed the 'I', Renounce the 'Mine', Everything will be your, Forever.**

*-Acharya Mahapragya*

With best compliments from :  
**Ratanlal Basant Kumar Parakh (Churu) Kolkata**



The Orbit, 1 Garstin Place, Kolkata-700 001 Ph: 4011 9050 (20 lines)

Fax: 2210 1256 email: [info@orbitgroup.net](mailto:info@orbitgroup.net) | [www.orbitgroup.net](http://www.orbitgroup.net)

**Orbit Residences. The key to high living.**

प्रकाशक-मुद्रक : श्री राजेश कोठारी द्वारा तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनू के लिए प्रकाशित तथा जायन आई. एन. सी. कॉर्पोरेशन, नई दिल्ली में मुद्रित।  
संपादक - जैन लूणकरण छज्जेड